मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 116 ● वर्ष 12, अंक 12 ● फ़रवरी 2023 ● दस रुपये

विशेष अंक 24 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

'भारत जोड़ो यात्रा' और लहालोट मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी 7

अमीर-ग़रीब की बढ़ती खाई पर अमीरों की चिन्ता का राज़ क्या है? 21

क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा! 17

बजट 2023-24 : मोदी सरकार की पूँजीपरस्ती का बेशर्म दस्तावेज़

मज़दूरों, ग़रीब मेहनतकश किसानों और आम मेहनतकश आबादी की लूट और पूँजीपतियों-अमीरज़ादों-धन्नासेठों को छूट

ग़रीबों को लाभ पहुँचाने वाली सभी योजनाओं के मद में कटौती, पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने का पूरा इन्तज़ाम

सम्पादकीय अग्रलेख

किसी भी देश का बजट उस देश में वर्गों के बीच के सम्बन्धों की एक तस्वीर पेश करता है। पूँजीवादी सरकारों के बजट में पूँजीवादी सरकारों का वर्ग चरित्र साफ़ तौर पर झलकता है। साथ ही, न सिर्फ़ पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के बीच का अन्तरविरोध उसमें साफ़ तौर पर प्रकट होता है, बल्कि अन्य वर्गों से पूँजीपति वर्ग के रिश्तों के बारे में भी यह दस्तावेज़ काफ़ी कुछ उजागर करता है। मिसाल के तौर पर, यह औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग जो कि शासक गुट में प्रभुत्वशाली स्थान रखता है और खेतिहर पूँजीपति वर्ग जो कि शासक गुट में अधीनस्थ स्थान रखता है, के बीच के सम्बन्ध, पूँजीपति वर्ग और उच्च मध्य वर्ग तथा मध्य-मध्य वर्ग के बीच के रिश्ते, पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग व ग़रीब किसानों के जनसमुदायों के बीच रिश्ते और पूँजीपति वर्ग के विभिन्न धड़ों के आपसी रिश्ते के बारे में बजट का दस्तावेज़ खुलासे करता है और उनके आपसी शक्ति-सन्तुलन की एक तस्वीर पेश करता है।

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक **लेनिन** ने कहा था कि मज़दूर वर्ग एक राजनीतिक वर्ग यानी सर्वहारा वर्ग के रूप में अपने आपको तभी खड़ा कर सकता है, जबकि न सिर्फ़ वह अपने और पूँजीपति वर्ग के बीच के अन्तरविरोध को सही तरीक़े से समझे, बल्कि वह समाज के सभी वर्गों के बीच के आपसी रिश्तों की एक सन्तुलित समझदारी बनाये। केवल तभी वह व्यापक जनसमुदायों को अपने राजनीतिक नेतृत्व में पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संगठित कर सकता है, अपने दुश्मन वर्गों को सही तरीक़े से समझ सकता है और पूँजीवादी सत्ता और मेहनतकश जनता के बीच के अन्तरविरोध का हल कर सकता है। यानी, केवल तभी वह व्यापक मेहनतकश जनसमुदायों को पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक और विचारधारात्मक वर्चस्व से मुक्त कर सकता है और जनता के स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों को वह ताक़त दे सकता है, जो पूँजीवादी व्यवस्था का ध्वंस कर सर्वहारा वर्ग के शासन और समाजवाद को स्थापित कर सके।

समाज के सभी वर्गों के बीच आपसी सम्बन्धों और विशेष तौर पर इन सभी वर्गों से पूँजीपति वर्ग के सम्बन्ध को उजागर करने के मामले में पूँजीवादी सरकारों द्वारा प्रस्तुत बजट एक विशेष स्थान

(पेज 11 पर जारी)

हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट से उजागर हुआ कॉरपोरेट इतिहास का सबसे बड़ा घोटाला

अडाणी ही नहीं, पूरे पूँजीवाद की घिनौनी सच्चाई दुनिया के सामने है

● आनन्द

पिछली 24 फ़रवरी को हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट के जारी होने के बाद भारत के स्टॉक एक्सचेंजों में भूचाल-सा आ गया। रिपोर्ट जारी होने के एक सप्ताह के भीतर ही अडाणी समूह की कम्पनियों के शेयर के मूल्य में 30 प्रतिशत यानी 120 अरब डॉलर तक की गिरावट देखने में आयी। दुनिया का तीसरे नम्बर का सबसे अमीर आदमी देखते ही देखते इतना फिसल गया कि अब उसकी गिनती शीर्ष 20 अमीरों में भी नहीं हो रही है। अमेरिकी 'एक्टिविस्ट शॉर्ट सेलर' संस्था हिण्डेनबर्ग की इस रिपोर्ट में तथ्यों और आँकड़ों के साथ यह उजागर किया गया है कि **अडाणी समूह ने इतने कम समय में जो पूँजी का साम्राज्य खड़ा किया है उसके पीछे दशकों से स्टॉक क़ीमतों और बही-खातों की हेराफेरी, विदेशी 'टैक्स हैवेन' में मौजूद अपने परिजनों द्वारा संचालित फ़र्ज़ी शेल कम्पनियों के ज़रिए अपने पैसे को अपनी ही कम्पनी में फिर से निवेश करके उसके शेयर की क़ीमतों को बढ़ाने और इन ऊँची शेयर क़ीमतों को दिखाकर देश और दुनिया की तमाम वित्तीय संस्थाओं से भारी-भरकम क़र्ज़ लेने की तिकड़म काम कर रही है।**

अडाणी समूह पर इस प्रकार के फ़र्ज़ीवाड़े के आरोप पहले भी लगते रहे हैं, लेकिन अब तक यह लुटेरा समूह सरकार में अपनी पहुँच और मानहानि के मुक़दमों का सहारा लेते हुए मामले को रफ़ा-दफ़ा करता आया था या फिर जाँच-पड़ताल की क़वायद करते हुए मामले को ठण्डे बस्ते में डाल दिया जाता था। लेकिन इस बार ऊँट को पहाड़ के नीचे आना पड़ा क्योंकि अबकी बार आरोप एक अन्तरराष्ट्रीय संस्था ने लगाया है और अब तमाम देशी-विदेशी निवेशकों व क़र्ज़दाताओं का भरोसा भी डगमगाता दिख रहा है जो शेयर बाज़ार में आये भूचाल से स्पष्ट है। इस भरोसे को बरक़रार रखने के लिए अडाणी ने हिण्डेनबर्ग की रिपोर्ट का एक हास्यास्पद जवाब भी दिया और रिपोर्ट के बाद लाये गये फ़ॉलो-ऑन पब्लिक ऑफ़र से प्राप्त रक़म को निवेशकों को वापस लौटा दिया। लेकिन फिर भी अडाणी समूह की कम्पनियों के शेयरों में औंधेमुँह हो रही गिरावट नहीं थमी।

ग़ौरतलब है कि हिण्डेनबर्ग रिसर्च एक 'एक्टिविस्ट शॉर्ट सेलर' संस्था है। 'शॉर्ट सेलिंग' का मतलब होता है कि किसी कम्पनी के शेयर को पहले अधिक दाम पर बेचकर बाद में कम

(पेज 10 पर जारी)

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर
देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत
आज भी सच्ची आज़ादी और इंसाफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के शहादत दिवस (27 फ़रवरी) के अवसर पर

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादी का
बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या, ये अँधेरा?
ये कारवाँ रुका क्यों है?

बढ़े चलो,
कि अभी
काफ़िला-ए-इंक़लाब को
आगे,
बहुत आगे जाना है...

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।

2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।

3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)

4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं।
नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

जोशीमठ आपदा : मुनाफ़ाख़ोरी की योजनाओं के बोझ से धँसता एक शहर

● अपूर्व मालवीय

उत्तराखण्ड का जोशीमठ एक बड़ी-सी आपदा के मुहाने पर खड़ा है। इस प्राकृतिक आपदा को देर-सबेर आना ही था। लेकिन मुनाफ़े की हवस और बड़े पैमाने पर प्रकृति व हिमालय की पारिस्थितकीय के साथ छेड़-छाड़ ने इसकी गति को तीव्र कर दिया है। आज की तारीख़ में इस छोटे-से शहर की आबादी के सामने अपने आवास और रोज़ी-रोटी का संकट खड़ा हो गया है। बीते 2 जनवरी की रात साढ़े बारह बजे के क़रीब जोशीमठ के नौ वार्डों में अचानक से भू-धँसाव होने से सड़कों और सैकड़ों मकानों में दरारें आ गयीं। एक ज़ोरदार कम्पन और गर्जन ने वहाँ के लोगों को अन्दर तक हिलाकर रख दिया। दो जनवरी की उस रात से सैकड़ों परिवार सड़कों पर आ चुके हैं। महज़ ढाई वर्ग किलोमीटर में फैले जोशीमठ के डेढ़ वर्ग किलोमीटर के ऐरिया को आपदा ग्रस्त भू-धँसाव क्षेत्र घोषित कर दिया गया है। अब तक 800 से ज़्यादा ऐसे मकानों को चिह्नित किया गया है जिसमें रहना अब ख़तरनाक है। समय बढ़ने के साथ-साथ ये दरारें और भी मकानों, भवनों और सड़कों को अपनी चपेट में लेती जा रही हैं। सैकड़ों परिवारों को आस-पास के इलाक़ों, स्कूलों, नगर पालिका की बिल्डिंग, लॉजों आदि में शिफ़्ट कर दिया गया है। हर बार की तरह आपदा से प्रभावित लोगों के ज़ख़्मों पर मलहम लगाते हुए उन्हें राहत के कुछ पैकेज (टुकड़े) पकड़ा दिये गये हैं। लेकिन आपदा के सम्भावित कारक अभी भी अपनी गति से इससे भी बड़ी आपदा को निकट लाने के लिए लगातार सक्रिय हैं।

कैसे आयी यह आपदा!

जोशीमठ की इस आपदा को समझने के लिए वहाँ की भू-गर्भीय और भू-स्थलीय परिस्थिति को समझना होगा। तभी हम समझ सकते हैं कि ये आपदा प्राकृतिक कम मानव जनित ज़्यादा है। भू-वैज्ञानिकों के अनुसार जोशीमठ हज़ारों साल पहले ग्लेशियरों द्वारा लायी गयी मिट्टी (मोरेन) और एक बहुत बड़े भू-स्खलन से सपाट हुए क्षेत्र पर बसा शहर है। इसकी सतह किसी ठोस पत्थर पर नहीं, बल्कि बालू और छोटे पत्थरों पर टिकी है। ऐसे में इस क्षेत्र में कोई भी भू-गर्भीय हलचल, किसी दबाव के कारण मिट्टी के खिसकने या बैठने से इसकी ऊपरी सतह पर दरारें आना स्वाभाविक है। 8वीं से 11वीं सदी तक राज करने वाले कत्यूरी राजवंशों से लेकर अबतक इस क्षेत्र में भूस्खलन की बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ देखी गयी हैं। यहाँ तक कि कत्यूरी राजवंश को अपनी राजधानी तक शिफ़्ट करनी पड़ी थी। 1932-39 तक इस क्षेत्र का सर्वे करने वाले एक अंग्रेज़ भूवैज्ञानिक अर्नोल्ड हेइम ने भी इस क्षेत्र को भू-स्खलन के लिए बहुत ही संवेदनशील बताया था। 1960-70 के दशक में भी इस क्षेत्र में भू-धँसाव व स्खलन की बड़े पैमाने पर हुई घटनाओं को देखते हुए उस समय की तत्कालीन उत्तर-प्रदेश की सरकार ने 1976 में वहाँ के गढ़वाल कमिश्नर महेश चन्द्र मिश्रा के नेतृत्व में एक 18 सदस्यीय कमेटी का गठन किया। इस कमेटी ने इस क्षेत्र की संवेदनशीलता को देखते हुए बड़े निर्माण कार्यों पर रोक लगाने, खेती-बाड़ी को प्रतिबन्धित करके बड़े पैमाने पर पेड़ लगाने ताकि मिट्टी पर पकड़ बनायी रखी जा सके, बड़े-बड़े बोल्डर पत्थरों के साथ किसी भी प्रकार से छेड़-छाड़ न करने, बारिश के पानी का रिसाव रोकने के लिए पक्की नालियाँ बनाने और नदी के तटों को छीजने से रोकने के लिए सीमेण्ट ब्लॉक बनाने जैसे कई सुझाव दिये। लेकिन इन सुझावों को दरकिनार करते हुए इसका ठीक उल्टा किया गया। विकास और पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर यहाँ सड़क, बाँध, सुरंग, बहुमंज़िला इमारतों का बनना जारी रहा। आज की तारीख़ में जोशीमठ में शहरी कंस्ट्रक्शन का भार होने के साथ-साथ मुनाफ़े की अन्धी हवस को पूरा करने के लिए हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट के बाँध, सुरंग और ऑल वेदर रोड तक के कंस्ट्रक्शन किये जा रहे हैं, जिसका ख़ामियाज़ा यहाँ की आम जनता से लेकर हिमालय के पूरी परिस्थितिकीय तंत्र तक को चुकाना पड़ रहा है।

जोशीमठ नगरपालिका क्षेत्र में 3900 मकान और 400 से ज़्यादा व्यावसायिक भवन हैं। लेकिन मात्र 10 प्रतिशत शहरी आबादी ही ड्रेनेज सिस्टम के तहत आती है। बारिश के पानी के साथ घरों का गन्दा पानी निकालने की सही व्यवस्था नहीं है। यह पानी ज़मीन के नीचे रिसता है। लगातार पानी रिसने से मिट्टी में मौजूद चिकने खनिज बह जाते हैं और ज़मीन कमज़ोर होती चली जाती है। ऊपर से लगातार हो रहा निर्माण भार को और बढ़ाता है। वहीं दूसरी तरफ़ एन.टी.पी.सी. की तपोवन विष्णुगाड जल विद्युत परियोजना के तहत बनने वाली 12 किलोमीटर की सुरंग ने इस परिस्थिति को और भी जटिल बना दिया है। इस हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट ने पिछले दो दशकों में ड्रिलिंग और विस्फोट से इस क्षेत्र की संवेदनशीलता को नुक़सान पहुँचाया है। उसने भी जोशीमठ की इस आपदा को तीव्र किया है। पिछले दो दशकों में इस सुरंग के निर्माण के साथ ही यहाँ मकानों, सड़कों और पहाड़ों में दरारें आने और प्राकृतिक आपदाएँ आने का सिलसिला लगातार बढ़ा और तेज़ हुआ है। 2007 में जोशीमठ के नज़दीक चाई गाँव में जिसके ठीक नीचे इस सुरंग का निर्माण किया जा रहा था, एक साथ दर्जनों मकानों में बड़ी-बड़ी दरारें आ गयी थीं और लोगों को अपना घर छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा था। 2009 में सुरंग का निर्माण करते हुए टनल बोरिंग मशीन द्वारा एक ऐसे बोल्डर को काट दिया गया, जहाँ से 700 लीटर प्रति सेकेण्ड के हिसाब से कई दिनों तक पानी निकलता रहा। इस मशीन ने इस भू-क्षेत्र के भू-गर्भीय जलस्रोत में एक छेद कर दिया था। इस दौरान इलाक़े के कई गाँव में पेयजल का संकट उत्पन्न हो गया था। इसी दौरान इस मशीन के फँस जाने से जोशीमठ के ठीक नीचे एक दूसरी टनल खोदी गयी ताकि इस मशीन को निकाला जा सके। जोशीमठ के ठीक नीचे बनी इस सुरंग ने उसकी ऊपरी सतह को और भी कमज़ोर कर दिया है। फ़रवरी 2021 में भी इस परियोजना के ठीक ऊपर ऋषि गंगा-धौलीगंगा परियोजना में आयी आपदा (बाढ़) के कारण 200 से ज़्यादा मज़दूरों को अपनी जान गँवानी पड़ी थी। एनटीपीसी की इस परियोजना का विरोध भी वहाँ की स्थानीय आबादी पिछले दो दशकों से कर रही है लेकिन ठेका व निजी कम्पनियों को मुनाफ़ा पहुँचाने की सरकारी योजना को बदस्तूर अमली जामा पहनाया जा रहा है।

पहाड़ों को ऊपर से उजाड़ और अन्दर से खोखला करने की योजनाएँ!

2013 की केदारनाथ आपदा से लेकर जोशीमठ की त्रासदी तो एक बानगी है। जोशीमठ में जो हो रहा है वो सिर्फ़ इसी क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि हिमालय रीजन की एक पूरी पट्टी है, जिसपर बसे कई शहर, क़स्बे व गाँव इस तरह के ख़तरनाक भू-स्खलन, धँसाव व उच्च तीव्रता के भूकम्प जोन में आते हैं। इसे समझने के लिए इसके भूगोल को समझना ज़रूरी है। जोशीमठ में जो हो रहा है वो उत्तराखण्ड के कई पर्यटक

(पेज 4 पर जारी)

विकास के नाम पर विनाश का मॉडल : गंगा विलास और टेण्ट सिटी

● अमित (बनारस)

पिछली 13 जनवरी को बनारस में प्रधानमंत्री मोदी ने टेण्ट सिटी और गंगा विलास क्रूज़ को हरी झण्डी दिखायी। कमोबेश उसी के आसपास ऑक्सफ़ैम ने अपनी रिपोर्ट जारी करते हुए देश में अमीरी-ग़रीबी की खाई के बारे में आँकड़े प्रस्तुत किये। टेण्ट सिटी और गंगा विलास क्रूज़ को हरी झण्डी दिखाते समय प्रधानमंत्री मोदी ने कहा कि "ये भारत के विकास का एक उदाहरण है। पहले लोग इस तरह के अनुभव लेने के लिए विदेश जाते थे, लेकिन अब देश में ही ऐसी सुविधा उपलब्ध है।" अनजाने में ही सही, लेकिन मोदी ने जो बात कही, उसे अगर ऑक्सफ़ैम द्वारा जारी की गयी रिपोर्ट के तथ्यों और आँकड़ों की रोशनी में रखकर देखें तो यह बात बिल्कुल सटीक लगती है कि सही मायने में टेण्ट सिटी और गंगा विलास क्रूज़, भारत के विकास के उस मॉडल का एक उदाहरण देते हैं, जो मौजूदा फ़ासीवादी मोदी सरकार ने देश की जनता के ऊपर थोप दिया है। आइए देखते हैं, कैसे?

फ़ासिस्ट जब विकास की बात करते हैं...

सबसे पहले, टेण्ट सिटी की बात! बनारस में गंगा नदी के घाटों के सामने की तरफ़ पूर्वी किनारे पर रेत पर 10 हेक्टेयर में टेण्ट सिटी का निर्माण किया गया है। इस टेण्ट सिटी में रुकने का किराया 8,000 से 30,000 तक है। टेण्ट सिटी में पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर तरह-तरह की गतिविधियाँ, घाटों का दृश्य देखने के लिए वाच टॉवर का निर्माण आदि की ख़बरें ख़ूब चर्चा में हैं। लेकिन यह सारा विकास किस क़ीमत पर हो रहा है, अब इसे भी जान लेते हैं। इस टेण्ट सिटी के निर्माण के कुछ ही दिनों बाद अख़बारों में बनारस में घाटों के धँसने की ख़बर आने लगी। इस बाबत जब जाँच पड़ताल की गयी तो बीएचयू के वैज्ञानिकों ने यह बताया कि पर्यटन को बढ़ावा देकर 'विकास' करने के नाम पर गंगा के पूर्वी छोर पर लम्बे समय से बालू का खनन नहीं कराया जा रहा है, जिसके कारण दूसरी तरफ़ घाटों की ओर गंगा की धारा का दबाव बढ़ रहा है और यहाँ घाटों में धँसाव शुरू हो गया है। वैज्ञानिकों की यह बात कुछ न्यूज़ पोर्टलों आदि पर आ तो गयी, लेकिन बनारस का प्रशासन इस मुद्दे पर चुप्पी मारकर बैठा हुआ है और बोल्डर डलवाने आदि के नाम पर खानापूर्ति करने में लगा है जो कि इस धँसाव को रोकने के लिए नाकाफ़ी साबित हो रहे हैं।

कुछ ऐसा ही हाल गंगा विलास क्रूज़ का है। यह क्रूज़ 13 जनवरी को रवाना हुआ और 51 दिनों की यात्रा करते यह क्रूज़ भारत के पाँच राज्यों और बांग्लादेश से होकर गुज़रेगा। इस यात्रा में शामिल होने वाले व्यक्ति की यात्रा का व्यय 50 से 55 लाख रुपये होगा मतलब लगभग 1 लाख रुपये प्रतिदिन। स्पा, सैलून, संगीत, जिम, ओपन स्पेस बालकनी आदि सुविधाओं से युक्त इस क्रूज़ पर जो आबादी विलासिता करने के लिए जायेगी, उसके बारे में सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है!

ऑक्सफ़ैम की जिस रिपोर्ट का ऊपर हमने जिक्र किया है, वह बताती है कि देश के अरबपतियों की सम्पत्ति में हर मिनट 2.5 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई है। ऊपर के 1 प्रतिशत अरबपतियों के पास देश की 40.5 प्रतिशत सम्पत्ति एकत्र हो चुकी है। जबकि नीचे की पचास प्रतिशत आबादी के पास देश की कुल सम्पत्ति का तीन प्रतिशत हिस्सा है। ज़ाहिर है कि गंगा विलास और बनारस में बनायी गयी इस टेण्ट सिटी का विकास नीचे की इस आबादी के लिए नहीं है, उसको तो बस उस विनाश का ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ेगा जिसकी क़ीमत पर यह विकास हुआ है।

वास्तव में फ़ासीवादी मोदी सरकार के शब्दकोश में विकास शब्द का मतलब ही विनाश है। 'सबका साथ सबका विकास' का जुमला उछालने वाली मोदी सरकार ने मुट्ठीभर 'धनपशुओं का विकास और बाक़ी सबका विनाश' की नीति पर अमल किया है। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट इसी का एक नमूना पेश करती है। जब मोदी सरकार ने सत्ता में आने के साथ ही गंगा को स्वच्छ और निर्मल कर देने की क़समें खायी थीं, तभी यह समझ में आ गया था कि अब गंगा के साथ भी विकास के नाम पर विनाश की वही कहानी दुहरायी जायेगी। गंगा संरक्षण के नाम पर मंत्रालय बना देने वाली और 'नमामि गंगे' जैसी जुमलेबाज़ी करने वाली मोदी सरकार के कार्यकाल में स्थिति यह है कि 2014 से लेकर अब तक गंगा के संरक्षण के नाम पर लगभग 20 हज़ार करोड़ रुपये मंज़ूर किये जा चुके हैं। इस काम के लिए एक ट्रस्ट का भी गठन किया गया है। लेकिन गंगा की सफ़ाई के लिए सरकार कितनी गम्भीर है, इसे इसी से समझा जा सकता है कि ट्रस्ट का प्रमुख वित्त मंत्री को बनाया गया है, जिसकी व्यस्तता के कारण इस ट्रस्ट की बैठकें तक नहीं होतीं। ट्रस्ट के द्वारा अबतक लगभग 398 करोड़ रुपये की ही परियोजनाएँ स्वीकृत हैं, यानि मंज़ूर की गयी राशि में से भी एक बड़ी राशि ख़र्च ही नहीं हुई है। जो राशि ख़र्च हुई भी है, उसका इस्तेमाल गंगा के किनारों पर घाटों की मरम्मत कराने, हर की पौड़ी कॉम्प्लेक्स का निर्माण कराने, गंगा के किनारों पर पौधे लगाने आदि के लिए हुआ है। ज़ाहिर है कि गंगा की दुर्दशा के लिए ज़िम्मेदार मुख्य कारणों पर कोई काम किये बिना ऐसी हवा-हवाई दिखावटी परियोजनाओं के ज़रिए केवल अरबों-खरबों के वारे-न्यारे किये जा सकते हैं और प्रचार किया जा सकता है, लेकिन वास्तव में गंगा की स्थिति में सुधार होना पाना असम्भव है। इसको इसी से समझा जा सकता है कि पिछले एक साल में ही गंगा का पानी बनारस में कई बार काला पड़ चुका है। पिछले दिनों राज्यसभा में जलशक्ति मंत्रालय के राज्य मंत्री ने बताया कि गंगा में हर दिन लगभग 28 करोड़ लीटर अपशिष्ट छोड़ा जाता है। इसका नतीजा यह है कि गंगा के किनारे रहने वाली एक बड़ी आबादी भयंकर बीमारियों के ख़तरे से जूझती रहती है। बीएचयू के चिकित्सा विज्ञान संस्थान द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार गंगा के किनारों पर रहने वाली आबादी में स्ट्रोक, दौरे और सेप्टिक एन्सेफ़ैलोपैथी जैसी न्यूरोलॉजिकल बीमारियाँ आम हैं। साथ ही बहुत-से लोग पार्किंसंस, मायोपैथी और माइलिटिस जैसी बीमारियों के भी शिकार हैं। इन बीमारियों का शिकार होने की सबसे अधिक सम्भावना 50 से 70 साल के लोगों में होती है। हाल ही में आये एक अध्ययन के अनुसार गंगा नदी की बेसिन में भूजल में आर्सेनिक की मात्रा बढ़ने के चलते आने वाले समय में इस क्षेत्र में भयंकर बीमारियों का ख़तरा मँडरा रहा है।

अब अगर इस पूरी तस्वीर को सामने रखें तो हमें स्पष्ट तौर पर विकास का वह मॉडल दिखायी देता है जो जनता के विनाश की बदौलत खड़ा हुआ है। यानी पूँजीपतियों के लिए टेण्ट सिटी और गंगा विलास तथा आम लोगों के लिए घाटों का धँसाव, नदी में प्रदूषण और भयंकर बीमारियों के ख़तरे के रूप में विनाश। अब यह हमें तय करना है कि हम विनाश के मॉडल को और ढोयेंगे और अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए विनाश के कगार पर खड़ी एक ज़हरीली दुनिया छोड़कर जायेंगे या इस विनाश के मॉडल को पलटकर सही मायने में एक इन्सानों के रहने लायक़ समाज बनाने की दिशा में आगे बढ़ेंगे।

काम और बेरोज़गारी भत्ते की माँग को लेकर मनरेगा यूनियन का प्रदर्शन

मनरेगा बजट में 30000 करोड़ रुपये की कटौती के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने रोष जताया

क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन ने मनरेगा दिवस के अवसर पर काम दिये जाने और काम ना देने की सूरत में बेरोज़गारी भत्ते की माँग को लेकर कैथल ज़िले के कलायत बीडीपीओ कार्यालय पर दो फ़रवरी को प्रदर्शन किया। प्रदर्शन में गाँव चौशाला, सिमला, रामगढ़, हरिपुरा के मजदूर शामिल रहे।

यूनियन प्रभारी रमन ने बताया कि पहली फ़रवरी को पेश किये गये आम बजट ने एक फिरमोदी सरकार के मजदूर-विरोधी चेहरे को उजागर कर दिया है। गोदी मीडिया चाहे जितना भी ज़ोर लगा ले, हक़ीक़त सामने आ ही जाती है। मनरेगा का बजट 2023-24 में घटाकर अब 61,032.65 करोड़ रुपये कर दिया गया है। यह 2022-23 के संशोधित अनुमान 89,154.65 करोड़ रुपये से 30 फ़ीसदी कम है। यानी कुल मिलाकर मनरेगा के बजट में 30 हज़ार करोड़ रुपये की कटौती कर दी गयी है। इस कटौती का सीधा मतलब है मज़दूरों के कार्यदिवस की कटौती। अगर मौजूदा बजट को कुल मनरेगा परिवारों में बाँटा जाये तो मुश्किल से 40 दिन ही कार्यदिवस बनते हैं। असल में मनरेगा योजना में सालाना न्यूनतम 100 दिन के रोज़गार के लिए 2.76 लाख करोड़ चाहिए।

सरकार मनरेगा में 100 दिन के काम की गारण्टी देती है लेकिन वह अपनी ज़ुबान पर कहीं भी खरी नहीं उतरती। आँकड़ों के हिसाब से देशभर में मनरेगा में काम मिलने का औसत 35 से 45 दिन भी बड़ी मुश्किल से पड़ता है। मनरेगा में पहले से ही बजट की कमी के साथ धाँधली होने का आरोप लगता रहता है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के मशीनीकरण की वजह से भी बेरोज़गार मज़दूरों की संख्या बढ़ने से मनरेगा पर भार बढ़ना लाज़िमी था। लेकिन एक तरफ़ तो मोदी सरकार कॉरपोरेट टैक्स में पूँजीपतियों को भारी छूट दे रही है, दूसरी तरफ़ सरकारी राशन, रसोई गैस से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य में मिलने वाली सब्सिडी का बजट घटा रही है। इससे मज़दूरों पर महँगाई का बोझ और बढ़ेगा।

चौशाला से आयी मनरेगा मज़दूर मीना ने कहा कलायत ब्लॉक के मज़दूर परिवारों को मुश्किल से 30-40 दिन ही काम मिल पाता है। मनरेगा कानून के तहत काम के आवदेन के 15 दिनों के भीतर अगर काम नहीं मिलता है, तो आवेदक मज़दूरों को बेरोज़गारी भत्ता देने का प्रावधान है। लेकिन कलायत के एबीपीओ व बीडीपीओ का साफ़ कहना है बेरोज़गारी भत्ता नहीं दिया जायेगा। यूनियन द्वारा दो दिन पहले सीईओ सुरेश रविश को भी बेरोज़गारी भत्ते की माँग से अवगत कराया था जिन्होंने इस विषय पर कार्रवाई करने का आश्वासन दिया था। इसलिए हम फिर से लिखित में बेरोजगारी भत्ते की माँग विभाग के आगे रख रहे हैं।

एबीपीओ व बीडीपीओ द्वारा मजदूरों के रोज़गार के अधिकार को छीनने का प्रयास लगातार किया जा है। रोज़गार गारण्टी के तहत काम न देना व बेरोज़गारी भत्ता न देना मजदूरों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है।

आज हर जगह श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए मज़दूरों से हाड़तोड़ मेहनत करवायी जा रही है। लम्बे-चौड़े दावे करने वाली मोदी सरकार मनरेगा मज़दूरों को किसी भी प्रकार की सुविधा नहीं दे रही है।

ऐसे में सरकार को क़ायदे से मनरेगा के बजट, कार्यदिवस व दिहाड़ी में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए थी। लेकिन मोदी सरकार ने उल्टा मनरेगा बजट में कटौती करके मजदूरों के हालात को और बदतर बनाने योजना बना रखी है। ऐसे में मनरेगा मजदूरों की जिम्मेदारी बनती है कि वे मोदी सरकार के इस मज़दूर विरोधी फ़ैसले के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरकर विरोध करें और सरकार को रोज़गार देने के कर्तव्य को पूरा करने के लिए बाध्य करें।

– बिगुल संवाददाता

जोशीमठ आपदा : मुनाफ़ाख़ोरी की योजनाओं के बोझ से धँसता एक शहर

(पेज 3 से आगे)

स्थलों, शहरों, क़स्बों और गाँवों में भी शुरू हो चुका है। फ़र्क़ बस इतना है कि कहीं यह प्रक्रिया धीमी है तो कहीं बहुत तेज़ है। निम्न से लेकन उच्च हिमालयी क्षेत्र की संवेदनशीलता, इसके जंगलों के काटे जाने, चौड़ी सड़कों और बड़े बाँधों की परियोजनाओं के नुक़सान पर बहुत सारे भूवैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों के लेकर अनेक ऐक्टिविस्टों तक ने अपनी शंकाएँ, रिपोर्ट और सुझाव आदि जारी किये हैं। पूरा हिमालय अभी कच्चा व युवा पहाड़ है। जो लगातार बन रहा है। ये वो क्षेत्र है जहाँ भारतीय टेक्टोनिक प्लेट यूरेशियन प्लेट से टकराती है। इस कारण यह क्षेत्र भू-स्खलन व भूकम्प के प्रति बहुत ही ज़्यादा संवेदनशील है। लेकिन प्राइवेट कम्पनियों से लेकर पूँजीवादी राज्यसत्ता तक को इसकी परवाह नहीं है। राजनीतिक पार्टियों को चुनाव के लिए पूँजीपतियों से करोड़ों का चन्दा मिलता रहे, नेताओं-नौकरशाहों की जेब गरम होती रहे! अमीरों की विलासिता और मुनाफ़े की अन्धी हवस में हिमालय के इस क्षेत्र में उन परियोजनाओं को लागू किया जा रहा है, जो पर्यावरण के साथ ही साथ हिमालय और पूरे उत्तर भारत के मैदानी इलाक़े की आबादी के जान-माल के लिए बहुत ही ख़तरनाक है। सबसे ज़्यादा भूकम्प की तीव्रता वाले सिस्मिक ज़ोन 4 और 5 के क्षेत्र में आने वाले टिहरी और पंचेश्वर बाँध जैसी बड़ी-बड़ी जल विद्युत परियोजनाएँ चलायी जा रही हैं जो किसी भी समय पहाड़ों से लेकर उत्तर भारत के एक बहुत बड़े भू-भाग को बहा और डुबा देने की क्षमता रखती हैं। ये बड़े-बड़े बाँध हिमालय के ऐसे क्षेत्रों में बनाये गये हैं और बनाये जा रहे हैं, जहाँ भूकम्प का सर्वाधिक ख़तरा है। पंचेश्वर बाँध जैसी परियोजना अपने आप में इतनी ख़तरनाक है कि इसके डूब क्षेत्र में पिथौरागढ़ ज़िले के 87 गाँव तो आयेंगे ही साथ ही हिमालय की कई वनस्पतियों, जीव-जन्तुओं, पक्षियों और मछलियों की कई प्रजातियों का अस्तित्व संकट में आ जायेगा। अभी उत्तराखण्ड में 25 जल विद्युत परियोजनाएँ चल रही हैं। जबकि 197 परियोजनाएँ विभिन्न नदी घाटियों में प्रस्तावित हैं।

वहीं दूसरी तरफ़ चारधाम सड़क परियोजना (ऑल वेदर रोड) से लेकर ऋषिकेश-कर्णप्रयाग रेल परियोजना तक ने हिमालय को जो नुक़सान पहुँचाया है और पहुँचा रहे हैं उसकी भरपाई शायद ही कभी हो पाये। चार-धाम परियोजना में 92 हज़ार पेड़ों को काटा जाना है, जिसमें अभी तक 70 हज़ार से ज़्यादा पेड़ों को काटा जा चुका है। सड़क काटने में निकलने वाला मलबा सीधे नदियों में डाल दिया जा रहा है। इससे नदियों का जल स्तर बढ़ने, धारा के प्रवाह बदलने के साथ ही जलीय जीवों और वनस्पतियों तक का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। वहीं ऋषिकेश-कर्णप्रयाग रेल परियोजना में 126 किलोमीटर की लाइन में 105 किलोमीटर लाइन सुरंगों के अन्दर से जायेगी। इन सुरंगों को बनाने के लिए ड्रिलिंग और विस्फोट लगातार जारी है। जो इसकी ऊपरी सतह को कमज़ोर तो कर ही रहा है साथ ही उन भू-गर्भीय जल स्रोतों को भी बाधित कर रहा है जिनके ऊपर स्थानीय आबादी की पानी और सिंचाई के लिए निर्भरता है। इन दोनों योजनाओं ने इस पूरे युवा और कच्चे पहाड़ को ऊपर से उजाड़ और भीतर से खोखला कर दिया है। हिमालय जैसे पहाड़ों में विकास की जो तकनीक अपनायी जा रही है वही तकनीक उसके विनाश का सबब बन रही है। इसी तरह की भौगोलिक स्थिति वाले दुनिया के कई देशों ने अपने यहाँ भी पहाड़ों में परिवहन और यातायात के साधनों का विकास किया है लेकिन प्रकृति को तबाह करके नहीं, बल्कि उसके साथ तालमेल बिठाकर। उन तकनीकों का इस्तेमाल करके जो इन पहाड़ों की संवेदनशीलता को नुक़सान पहुँचाए बगैर मानव की ज़रूरतों को पूरा करे। लेकिन भारत जैसे देश में पूरी अन्धेरगर्दी के साथ पूँजीपरस्त नीतियों को लागू किया जा रहा है।

इन परियोजनाओं का असर पिछले कुछ सालों से पूरे हिमालय में दिखायी भी दे रहा है। अतिवृष्टि, बादल फटना, भू-स्खलन, भू-धँसाव की घटनाएँ बहुत ज़्यादा बढ़ गयी हैं। पीने के पानी और सिंचाई के प्राकृतिक जलस्रोत लगातार सूखते जा रहे हैं। प्राकृतिक आपदाएँ लोगों पर क़हर बनकर टूट रही हैं, बावजूद इसके ये परियोजनाएँ बदस्तूर बढ़ती जा रही हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण पहले भी उच्च हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियरों के पिघलने की रफ़्तार काफ़ी बढ़ी है। लेकिन विकास और पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर पूरे हिमालय में जो तबाही मचायी जा रही है उसका ख़ामियाज़ा उत्तर भारत के साथ दक्षिण एशिया की एक बड़ी आबादी को भुगतना पड़ेगा। एक रिपोर्ट के मुताबिक़ पिछले 90 सालों में गंगोत्री ग्लेशियर 1.7 किलोमीटर पीछे गया है। हर साल यह 20 से 22 मीटर पीछे जा रहा है। हिमालय रीजन के इस क्षेत्र में सैकड़ों ग्लेशियरों के पिघलने की रफ़्तार काफ़ी बढ़ी है। जहाँ सामान्यतः यह 0.3 मीटर से 0.8 मीटर हुआ करती थी, वहीं यह 5 से 7 मीटर तक पहुँच चुकी है। यह रफ़्तार अगर ऐसे ही बरक़रार रही तो आने वाले कुछ दशकों में उत्तर भारत की एक बहुसंख्यक और दक्षिण एशिया की चालीस प्रतिशत आबादी पीने के साफ़ पानी, सिंचाई आदि के साथ जलीय स्रोतों के उन तमाम संसाधनों से वंचित हो जायेगी, जो लोगों के रोज़ी-रोटी और रोज़गार का ज़रिया हैं।

मुनाफ़े की अन्धी हवस और अमीरों की विलासिता को पूरा करने का अड्डा बनता हिमालय!

हिमालय की पूरी पारिस्थितिकी के तबाह होने और इन ग्लेशियरों के पिघलने की रफ़्तार को सरकार की इन तथाकथित विकास और पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने की योजनाओं ने और बढ़ा दिया है। ऑल वेदर रोड से लेकर ऋषिकेश-कर्णप्रयाग रेल लाइन और अभी हाल ही में प्रस्तावित टनकपुर-बागेश्वर रेल लाइन जैसी परियोजनाएँ अमीरों को उनकी ऐय्याशियों के लिए अड्डा बनाने के अलावा और क्या हैं जिसमें ये तबक़ा साप्ताहिक अवकाश पर अपनी फ़राटेदार गाड़ियों को चौड़ी-चौड़ी सड़कों पर दौड़ाते हुए सीधे हिमालय के शिखरों पर पहुँचे और वहाँ उधमचौकड़ी मचाते, प्लास्टिक के कचरों को फैलाते अपनी छुट्टियाँ बिताये और चला जाये! हिमालय के उन संवेदनशील इलाक़ों में हर तरह की सुख-सुविधा से युक्त बहुमंज़िला इमारतें, होटल और रिज़ॉर्ट बनाये जा रहे हैं जहाँ धरती पर एक छोटी-सी कम्पन भी बहुत बड़े भू-स्खलन को जन्म दे सकती है। लेकिन इससे सरकारों को कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता है। उसे अपने आक़ाओं की विलासिता के लिए सरअंजाम पूरा करने का हुक्म जो मिला हुआ है! इसके विनाश को भुगतना तो आम मेहनतकश जनता को है।

जोशीमठ तो एक झाँकी है!

जोशीमठ की आपदा के सम्भावित परिणाम की चर्चा की जाये तो ये कहा जा सकता है कि अगर जोशीमठ धँसता है तो इसके इर्द-गिर्द बहती नदियों का स्तर मलबा गिरने से बढ़ जायेगा और पानी दूसरे क़स्बे में घुस जायेगा, जिसके बाद बाक़ी इलाक़ों में भी भारी नुक़सान झेलना पड़ेगा। इसके साथ ही जोशीमठ कई ग्लेशियरों से घिरा हुआ इलाक़ा है। इसके धँसाव से बड़ा कम्पन पैदा होगा जिससे ग्लेशियर के बड़े हिस्से के टूटने का ख़तरा भी बढ़ जायेगा। अगर यह टूटता है तो बड़ा सैलाब आ सकता है जो जोशीमठ से लेकर हरिद्वार तक तबाही मचायेगा।

हिमालय के पर्यावरण की तबाही के अलग-अलग कारणों को मिलाकर अगर देखा जाये तो इसकी बुनियाद में पूँजीवादी व्यवस्था की अराजकता, अमीरों की विलासिता और मुनाफ़े की अन्धी हवस है। हिमालय की आपदा केवल जोशीमठ जैसे शहरों, क़स्बों की नहीं है बल्कि ये एक राष्ट्रीय आपदा है। छोटे-मोटे आन्दोलनों से इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। हिमालय की इस तबाही को राष्ट्रीय फलक पर लाने और एक व्यापक आन्दोलन खड़ा करने की आज ज़रूरत है। नहीं तो बड़ी-बड़ी ठेका कम्पनियों को फ़ायदा पहुँचाने, अमीरों की विलासिता और मुनाफ़े की अन्धी हवस में जिस प्रकार पूरे हिमालय के पारिस्थितिकीय तंत्र को बर्बाद किया जा रहा है, आने वाले वक़्त में इसका ख़ामियाज़ा पूरे उत्तर भारत को भुगतना पड़ सकता है। सरकारों के लिए ये आपदाएँ मौसमी चक्र बन चुकी हैं, जो आती और जाती रहती हैं। उसके लिए जनता उजड़ती-बसती रहती है। लेकिन मुनाफ़ा निरन्तर जारी रहना चाहिए!

आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी ऐतिहासिक हड़ताल की पहली वर्षगाँठ पर अतीत का सिंहावलोकन करते हुए भविष्य की तैयारियों का संकल्प लिया

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन (DSAWHU) के द्वारा दिल्ली के कश्मीरी गेट स्थित महिला एवं बाल विकास विभाग कार्यालय पर 2022 की ऐतिहासिक हड़ताल की पहली वर्षगाँठ पर कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर महिलाकर्मियों ने अपने हड़ताल के दिनों को याद करते हुए अतीत का सिंहावलोकन किया और भविष्य की तैयारियों का संकल्प लिया। मालूम हो कि बीते साल आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों ने 38 दिनों तक चली अपनी हड़ताल के जरिए बेहद बहादुराना ढंग से संघर्ष को अंजाम दिया था। तमाम तिकड़मों के बाद हड़ताल तोड़ने में असफल केजरीवाल और मोदी सरकार ने मिलकर उपराज्यपाल के माध्यम से हड़ताल के ऊपर हेस्मा जैसा दमनकारी कानून लगा दिया था, सैकड़ों की संख्या में महिलाकर्मियों को कारण बताओ नोटिस जारी किए गए थे व 884 महिलाकर्मियों को ग़ैर-क़ानूनी तरीके से टर्मिनेट कर दिया गया।

हड़ताल की पहली वर्षगाँठ पर सभा को सम्बोधित करते हुए यूनियन अध्यक्षा शिवानी ने कहा कि “हमारी 2022 की हड़ताल विभाग और सरकार के लिए एक चुनौती थी। लाल झंडों के साथ सड़कों पर उतरे महिलाओं के सैलाब से ख़ौफ़ खाये दिल्ली व केन्द्र सरकार द्वारा हड़ताल पर 'हेस्मा' लगाया गया जो कि हमारी राजनीतिक जीत थी। हाईकोर्ट से लेकर सड़क तक हमारा संघर्ष आज भी जारी है। आज का दिन जश्न मनाने का दिन है और संकल्प लेने का भी दिन है। हमने अपनी एकता और संघर्ष के बदौलत पूँजी की सत्ता को हिलाकर रख दिया था। इस संघर्ष के अगले विशाल पड़ाव पर हम पिछले साल के सभी कीर्तिमानों को ध्वस्त करेंगे!”

इस मौके पर यूनियन द्वारा हड़ताल की अद्वितीयता को याद करते हुए एक कैलेण्डर जारी किया गया व एक डॉक्युमेण्ट्री फ़िल्म का प्रदर्शन भी किया गया जिसमें हड़ताल के दौरान की कुछ चुनिंदा तस्वीरें व क्लिप्स जारी किये गये।

पहली वर्षगाँठ के जश्न के इस शानदार अवसर पर कई इंक़लाबी गीतों का गायन किया गया और गुरुशरण सिंह द्वारा रचित नाटक “हवाई गोले” का मंचन कर पूँजीवादी लोकतन्त्र का भण्डाफोड़ किया गया। नाटक में अन्य कलाकार साथियों के साथ आँगनवाड़ी की महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर अभिनय किया। पिछले साल के संघर्ष में आगे बढ़कर नेतृत्व देने वाली महिलाओं को यूनियन की ओर से निकाला गया कलात्मक पोस्टर एवं चित्रों से बना कैलेण्डर प्रदान करके सम्मानित किया गया।

आँगनवाड़ी की संघर्षरत महिलाओं के नाम कई मज़दूर संगठनों के समर्थन संदेश आये।

यू.के. से जी.एम.बी, सी.डब्ल्यू.यू, आर.एम.टी, एफ़.डी.डब्ल्यू यूनियनों व राजनीतिक कार्यकर्ताओं व पाकिस्तान के रेड वर्कर्स फ्रण्ट द्वारा भेजे समर्थन सन्देशों को पढ़कर सुनाया गया।

आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों का संघर्ष देश ही नहीं दुनियाभर के मज़दूर आन्दोलन के लिए एक उदाहरण है। दिल्ली की आँगनवाड़ी कामगारों ने अपनी लड़ाई के ज़रिए न सिर्फ़ इस पूंजीवादी व्यवस्था को बेनक़ाब किया है बल्कि हज़ारों सालों से चली आ रही पितृसत्तात्मक मानसिकता को भी चुनौती देने का काम किया है।

महिलाकर्मियों ने ऐलान किया कि अपनी स्वतंत्र क्रान्तिकारी यूनियन के नेतृत्व में हम अपनी लड़ाई जारी रखेंगे!

– बिगुल संवाददाता

(अ)मृत काल के बजट में आँगनवाड़ीकर्मियों व 'स्कीम वर्कर्स' को क्या हुआ हासिल?

– वृषाली (दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन)

1 फ़रवरी को वित्त मन्त्री निर्मला सीतारमण ने 2023-24 का आम बजट और “अमृत काल” का पहला आम बजट पेश किया। बजट में जनभागीदारी, सबका साथ सबका विकास, वंचितों को वरीयता, सहकार से समृद्धि जैसी कई कोरी गप्पें हाँकी गयीं। बजट पेश होने के बाद अपनी ज़िम्मेदारी बख़ूबी निभाते हुए 'गोदी मीडिया' ने तारीफ़ों के पुल बाँधते हुए यह ख़बर भी दे दी कि प्रधानमन्त्री ने बजट भाषण के बाद कितनी बार संसद की मेज़ थपथपा दी। वित्त मन्त्री की नज़रों में भारत का सितारा बुलन्द है, प्रति व्यक्ति आय में दुगुनी बढ़ोत्तरी होकर यह 1.97 लाख रुपये हो चुकी है। लेकिन इन दावों की हवा निकालने वाली ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अनुसार भारत की केवल 5 फ़ीसदी आबादी का देश की सम्पदा के 60 फ़ीसदी पर कब्ज़ा है व 50 फ़ीसदी आबादी के पास केवल 3 फ़ीसदी सम्पदा है। सबका साथ और सबका विकास की रट लगाते हुए भाजपा सरकार ने खाद्य सब्सिडी को घटाकर 1.97 लाख करोड़ कर दिया है। इसके साथ ही 81 करोड़ लोगों को मुहैया किये जा रहे राशन को आधा कर 5 किलोग्राम प्रति व्यक्ति कर दिया है।

महिला एवं बाल विकास मन्त्रालय की बात करें तो इस वर्ष इस मन्त्रालय को 25,449 करोड़ रुपये की राशि आवण्टित की गयी है (जो सड़कों और पुलों के निर्माण के लिए आवण्टित की गयी राशि का 10वाँ हिस्सा है)। इस मन्त्रालय के तहत आने वाली तमाम कल्याणकारी योजनाओं की राशि में बस नाम की वृद्धि की गयी है। प्रधानमन्त्री पोषण शक्ति निर्माण अर्थात मिड-डे मील की राशि में सही मायनों में देखा जाये तो कमी ही की गयी है। वर्ष 2022-23 के बजट में इस स्कीम के लिए 10,234 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गयी थी जिसका पुनः अवलोकन कर 12,800 करोड़ रुपये किया गया। वर्ष 2023-24 के लिए यह राशि 11,600 रुपये तय की गयी है, जो पूरे बजट का महज 0.57 फ़ीसदी हिस्सा है। वहीं सक्षम आँगनवाड़ी, जिसके तहत समेकित बाल विकास विभाग व पोषण अभियान जैसी स्कीमें आती हैं, की आवण्टित राशि में महज 1 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी की गयी है। महँगाई के मद्देनज़र इस राशि का वास्तविक मूल्य कम ही हो गया है। ज्ञात हो कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में बच्चों को दिए जाने वाले पोषाहार पर सरकार प्रति बच्चा प्रति दिन महज 8 रुपये खर्च करती है। इस राशि में वर्ष 2018 से कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है। उसी प्रकार आँगनवाड़ी में ज़मीनी स्तर पर कार्यरत आँगनवाड़ीकर्मियों को केन्द्र सरकार की ओर से दी जाने वाली राशि में भी वर्ष 2018 से कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है व 2018 में घोषित मानदेय बढ़ोत्तरी के हिसाब से कहीं भुगतान भी नहीं किया गया है। आँगनवाड़ी व मिड-डे-मील के बजट वास्तविक अर्थों में 2014-15 के बरक्स कम कर दिये गये हैं।

निर्मला सीतारमण का चमकता सितारा भारत विश्व भूख सूचकांक में 121 देशों की सूची में 107वें पायदान पर खड़ा है। कोविड-19 के बाद के 2021 के आँकड़ों के अनुसार देश के तकरीबन 33 लाख बच्चे कुपोषण का शिकार हैं, जिनमें 17.76 लाख अतिकुपोषित हैं। वास्तव में यह आँकड़ा और भयंकर ही होगा। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण - 5 (2019-21) के अनुसार देश में स्त्रियों की 57 फ़ीसदी व बच्चों की 67 फ़ीसदी आबादी ख़ून की कमी का शिकार है। एक ऐसे देश में जहाँ कुपोषित बच्चों की संख्या विश्व में सबसे ज़्यादा हो, समेकित बाल विकास परियोजना व मिड-डे मील जैसी स्कीम देश की मेहनतकश आबादी के घरों में पलने वाले शिशुओं-माताओं को ज़रूरी पोषण उपलब्ध करने का काम करती है। लेकिन इन लाभकारी योजनाओं की असल दशा गुणवत्तापूर्ण सुविधा देने के बजाय केवल कामचलाऊ काम करना होता है। समेकित बाल विकास परियोजना के निम्न आँकड़े इसे और साफ़ बयान करते हैं। वर्ष 2021 तक समेकित बाल विकास परियोजना के तहत 8.39 करोड़ लाभार्थी दर्ज थे। भारत की समेकित बाल विकास परियोजना यूँ तो दुनिया भर में ऐसी सबसे बड़ी कल्याणकारी योजना है। लेकिन 2019 के आँकड़ों के अनुसार इसके तहत आने वाले 97,000 केन्द्रों में कार्यकर्ता के पद व 98,000 में सहायिका के पद खाली पड़े हैं व 30 फ़ीसदी सुपरवाइज़र के पद खाली पड़े हैं। इसी स्कीम के तहत आने वाली प्रधानमन्त्री मातृ वन्दना योजना के लिए वर्ष 2013 में निश्चित की गयी 5000 रुपये की राशि में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है। समेकित बाल विकास परियोजना देश के तीन में से केवल एक बच्चे को सेवाएँ प्रदान करती है। 36 फ़ीसदी आँगनवाड़ी केन्द्रों में शौचालय की व्यवस्था नहीं है, 25 फ़ीसदी में पीने के पानी जैसी बुनियादी व्यवस्था नहीं है।

भाजपा के इस अमृत काल के बजट में मेहनतकश अवाम के लिये शिगूफ़ों के अलावा और कुछ नहीं है। पोषण अभियान और मिड-डे मील को आवण्टित राशि में बराय नाम की बढ़ोत्तरी इन दोनों ही बेहद ज़रूरी स्कीमों के लिए नाकाफ़ी है। इसके साथ ही ऐसी स्कीमों में “स्वयंसेविकाओं' के तौर पर कार्यरत मिड-डे मील, आँगनवाड़ी व आशा कार्यकर्ताओं के लिए 2018 में घोषित मानदेय बढ़ोत्तरी की राशि का जुमला फेंकने के बाद भाजपा सरकार विस्मृति का शिकार हो चुकी है। आज जहाँ ज़रूरत इन स्कीमों पर होने वाले खर्च में इज़ाफ़ा करने की है, वहाँ वास्तविक मायनों में सरकार का खर्चा इन स्कीमों पर कम होता जा रहा है। इसके साथ ही सरकार यह चाहती है कि नयी शिक्षा नीति के तहत स्वयंसेवा के नाम पर आँगनवाड़ीकर्मियों की मेहनत की लूट में और वृद्धि की जाये और मानदेय की मामूली राशियों पर स्कीम वर्करों से सरकारी स्कूल के शिक्षक का काम भी करवाया जाये। वहीं आँगनवाड़ी केन्द्रों पर दी जाने वाली सुविधाओं की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी पर न तो बजट में न महिला बाल विकास मन्त्रालय में ही कोई चर्चा होती नज़र आती है। एक ओर तो भाजपा दिल्ली में 2022 में 38 दिन चली आँगनवाड़ीकर्मियों की हड़ताल के समर्थन का ढोंग कर रही थी, वहीं देश भर में अलग-अलग राज्यों में नियमितीकरण के लिए संघर्षरत स्कीम वर्करों के मसले पर भाजपा ने चुप्पी साध रखी है। ऐसे में इस बजट में निर्मला सीतारमण द्वारा महिलाओं को विकास का अग्रदूत घोषित करना एक मज़ाक से ज़्यादा कुछ नहीं है।

यूनियन में ठेका मज़दूरों की सदस्यता का मुद्दा फिर से तूल पकड़ रहा है

बेलसोनिका फैक्ट्री की यूनियन में ठेका मज़दूरों की सदस्यता के ख़िलाफ़ कम्पनी प्रबन्धन और श्रम विभाग का गठजोड़ बेनक़ाब!

ठेका मज़दूर को सदस्यता देने पर श्रम विभाग द्वारा बेलसोनिका की पंजीकृत यूनियन (मानेसर) को एक बार फिर से नोटिस देकर यूनियन मान्यता रद्द करने की चेतावनी!

● शाम

महज़ एक ठेका मज़दूर को सदस्यता देने पर कम्पनी प्रबन्धन की शह पर बेलसोनिका (मानेसर) के स्थायी मज़दूरों की पंजीकृत यूनियन – बेलसोनिका ऑटो कम्पोनेण्ट कर्मचारी यूनियन को श्रम विभाग ने 26 दिसम्बर 2022 को यूनियन के प्रधान/महासचिव के नाम ट्रेड यूनियन एक्ट 1926 तथा यूनियन के संविधान/नियमों के तहत 'कारण-बताओ नोटिस' जारी करते हुए यूनियन की मान्यता रद्द करने की चेतावनी दी है। इससे पहले यूनियन की ओर से की गयी शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। होना तो यह चाहिए था कि श्रम विभाग ग़ैर-क़ानूनी ठेका प्रथा लागू करने पर कम्पनी को कटघरे में खड़ा करके उस पर कार्रवाई करता। लेकिन श्रम विभाग उल्टा पंजीकृत यूनियन को दोषी बताकर यूनियन की मान्यता रद्द करने की चेतावनी दे रहा है।

पिछले वर्ष अगस्त में बेलसोनिका कम्पनी प्रबन्धन ने रजिस्ट्रार को दिये शिकायत पत्र में यूनियन द्वारा एक ठेका मज़दूर को यूनियन सदस्यता देने का आरोप लगाया था। इस पर सितम्बर में रजिस्ट्रार द्वारा यूनियन को 'कारण बताओ नोटिस' जारी किया गया था। लेबर कमिश्नर व रजिस्ट्रार द्वारा यूनियन के नाम लिखे पत्र में कहा गया कि ये कार्रवाई "प्रथम दृष्टया अवैध प्रतीत होती है" क्योंकि यह यूनियन के संविधान का "उल्लंघन" है। 'कारण-बताओ नोटिस' ट्रेड यूनियन क़ानून 1926 के सेक्शन 10 के तहत जारी किया गया है जिसमें क़ानून के सेक्शन 4 के सब-सेक्शन (1) और सेक्शन 6 (ई) और 22 का हवाला दिया गया है। मुख्यत: सेक्शन 4 (1) के अनुसार केवल वे ही कामगार यूनियन के पंजीकरण और सदस्यता के लिए आवेदन दे सकते हैं और सदस्य हो सकते हैं जो कामगार उसी संस्थान या उद्योग से जुड़े हुए हैं।

ज्ञात रहे कि यूनियन ने दो वर्ष पहले 14 अगस्त 2021 को केशव राजपूत नाम के एक ठेका मज़दूर को सदस्यता दी थी। वैसे तो स्थायी मज़दूरों की यूनियन द्वारा ठेका मज़दूरों को सदस्यता देने के मामला कम ही देखने को मिलते हैं। फिर भी यह मामला तब सामने आया था जब यूनियन ने उस साल के आयकर रिटर्न में उक्त मज़दूर का नाम दर्ज किया। चूँकि यह मुद्दा अब मीडिया में भी उछल गया है तो हरियाणा के श्रम विभाग में खलबली मचना भी लाज़िमी है और उसको अपने बचाव में मनमर्ज़ी की व्याख्या करते हुए यूनियन को नोटिस जारी करने पड़ रहे हैं। इस मुद्दे ने हरियाणा के श्रम विभाग की पक्षधरता और कम्पनी प्रबन्धन तथा मज़दूर विरोधी हरियाणा सरकार के नापाक गठजोड़ को उजागर कर दिया है।

बेलसोनिका ऑटो सेक्टर की दिग्गज कम्पनी मारूति के मदर प्लाण्ट के लिए कलपुर्जे बनाती है जिसमें प्रेस, डाई, वेल्डिंग, पेंट आदि शॉप हैं। इसमें लगभग 1100-1200 मज़दूर काम करते हैं। इनमें 680 स्थायी, 10 प्रोबेशन, 138 ठेका मज़दूर (जो 6-7 वर्ष से काम कर रहे हैं), 75 अप्रेण्टिस, 28 ट्रेनिंग और लगभग 250-300 मज़दूर ऐसे हैं जिनको 6 माह के लिए भर्ती किया गया है। कुल मिलाकर बेलसोनिका फैक्ट्री में लगभग 550 के आसपास ठेका, ट्रेनिंग, प्रोबेशन व अप्रेण्टिस मज़दूर काम करते हैं। ये सभी मज़दूर मशीनों पर उत्पादन का काम करते हैं।

मौजूदा क़ानूनों को देखें तो पता चलता है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 19 और ट्रेड यूनियन कानून (1926) हर मज़दूर को यूनियन बनाने का अधिकार देता है, जिसे मज़दूरों ने अपने संघर्षों व कुर्बानियों के बदौलत हासिल किया था। दोनों जगह कहीं भी स्थायी और ठेका मज़दूर में किसी भेद का ज़िक्र नहीं है।

यूनियन के पदाधिकारी यह बात स्पष्ट कर चुके हैं कि यूनियन के संविधान और नियमों को ट्रेड यूनियन एक्ट (1926) के सेक्शन 6 के अनुसार ही बनाया गया है, जिसकी मान्यता श्रम विभाग ने ख़ुद दी है। उसके बाद ठेका मज़दूरों को सदस्यता देने के प्रावधान में किये गये संशोधन की मान्यता भी इसी श्रम विभाग से ले चुके हैं। लेकिन अब श्रम विभाग प्रबन्धन की शह पर कार्रवाई करने की धमकी दे रहा है।

ट्रेड यूनियन का सदस्य कौन बन सकता है, यह सवाल नवम्बर 2016 में ही में गुड़गाँव जिला न्यायालय में चन्दर भान, आदि बनाम सनबीम ऑटोवर्क्स यूनियन के मामले में भी उठा था। एक फ़ैसले में, जिस पर ज़्यादातर ध्यान नहीं दिया गया, अदालत ने कहा कि फ़ैक्टरी में काम करने वाला कोई भी कामगार – चाहे वह स्थायी कर्मचारी हो या न हो, औद्योगिक विवाद (आईडी) अधिनियम की कामगार की परिभाषा को पूरा करता हो या नहीं, यूनियन की गतिविधियों में भाग लेने के योग्य है। उस समय वक़्त गुड़गाँव औद्योगिक क्षेत्र में, सनबीम ऑटोवर्कर्स यूनियन शायद एकमात्र यूनियन थी जो 240 दिनों से कम सेवा वाले मज़दूरों को सदस्यता देती थी। इसके बाद गुड़गाँव की ऑटो सेक्टर की वेण्डर कम्पनी मार्क एग्ज़ॉस्ट का मामला सामने आया जिसमें ठेका वर्कर यूनियन के पदाधिकारी ने बताया कि हमने अपनी कम्पनी के ठेका मज़दूरों की यूनियन बनायी है। साथ कुछ साल पहले हमारी ही कम्पनी की स्थायी मज़दूरों की यूनियन ने कुछ ठेका मज़दूरों को सदस्यता दी है।

राजस्थान की ऑटो सेक्टर की ऑटोनियम कम्पनी की यूनियन के स्थायी मज़दूरों में भी ठेका मज़दूरों को सदस्यता दी गयी थी। प्रतिक्रिया में कम्पनी ने काम नहीं है का बहाना बनाकर ठेका मज़दूरों को निकाल दिया था। उत्तर प्रदेश में एक अन्य सेक्टर की रुचि कम्पनी ने भी ठेका मज़दूरों को यूनियन की सदस्यता दी थी।

कम्पनियों में नकली ठेका प्रथा का चलन

दरअसल प्रबन्धन जिन मज़दूरों को ठेका मज़दूर कह रहा है वे वास्तव में ठेका मज़दूर हैं ही नहीं, वे नियमित प्रकृति का और तकनीकी काम करते हैं। एक तो अधिकांश मज़दूर मशीन चला रहे हैं और दूसरे वे कम्पनी प्रबन्धन की देखरेख और नियंत्रण में ही काम करते हैं और आमतौर पर उनकी भर्ती प्रक्रिया भी प्रबन्धन द्वारा इन्टरव्यू से ही की जाती है। देखा जाये तो उल्टा कम्पनी प्रबन्धन परिसर में ठेका प्रथा (विनियमन एवं उन्मूलन) एक्ट, 1970 का उल्लंघन कर रहा है। कम्पनियों में नकली और दिखावटी ठेका ही चलता है। यानी कम्पनी परिसर में हेल्पर दिखाकर स्थायी प्रकृति के काम और मशीनों पर काम करवाया जाता है। ऐसी कोर (बुनियादी व ज़रूरी) गतिविधियों में ठेका मज़दूरों से काम करवाना वर्जित है। अब नये लेबर कोडों में ऐसी गतिविधियों में ठेका मज़दूरों से काम कराने को ढीला करने के प्रावधान लाये जा रहे हैं। आन्ध्र पदेश सरकार ने तो 2003 में कुछ कोर गतिविधियों में ठेका मज़दूरों से काम करवाने की छूट दे दी है। कोर गतिविधियों में छूट का प्रावधान विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है।

तीसरा, अदालत का आदेश है कि सरकारी उपक्रमों में समान काम पर समान वेतन दिया जाये। उपक्रम सरकारी हो या निजी, में इस आदेश को लागू किये जाने की ज़रूरत थी। लेकिन श्रम क़ानूनों का उल्लघंन दिनदहाड़े जारी है। इससे साफ़ पता चलता कि पूँजीपतियों के चन्दे से चलने वाली सरकारें किसके लिए काम करेंगी, मालिकों/ठेकेदारों के लिए या मज़दूरों के लिए।

चौथा, सुप्रीम कोर्ट अपने कई फ़ैसलों में स्पष्ट कर चुका है कि तीन साल के बाद किसी भी किस्म के अस्थायी काम को नियमित करने का प्रावधान है।

पाँचवाँ, इसी श्रम विभाग की नाक के नीचे कम्पनियों, कारख़ानों व वर्कशॉपों में मज़दूरों के अधिकारों का सालों से हनन हो रहा है, लेकिन इस पर वह हमेशा चुप्पी साधे रहता है। 'स्थायी काम के लिए स्थायी रोज़गार' और 'समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार' की धज्जियाँ कम्पनी प्रबन्धन द्वारा श्रम विभाग की नाक के नीचे उड़ायी जा रही हैं। ऐसे में श्रम विभाग मोदी की तरह सब चंगा है का स्वाँग कर रहा है और उल्टा कम्पनी प्रबन्धन की शह पर पीड़ित को ही दोषी ठहराने पर आमादा है। मज़दूर यूनियन द्वारा गर्मियों में पंखे बन्द करने की श्रम विभाग को लिखित शिकायत पर कार्रवाई करने के बजाय यूनियन पर कार्रवाई करने की तत्परता दिखा रहा है। मालिकों की कठपुतली की तरह उनके इशारों पर नाच रहा है। ऐसे में अब इसे श्रम विभाग की "पूँजी-विभाग" कह दिया जाये तो कोई ग़लत नहीं होगा। कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग और शासन-प्रशासन का गठजोड़ और मज़दूर विरोधी चेहरा एक बार फिर से सामने आ रहा है।

चाहे एक ही ठेका मज़दूर को सदस्यता देने और उसके ख़िलाफ़ संघर्ष का मामला हो, मगर यह बेलसोनिका मज़दूर यूनियन का सराहनीय कदम है। लेकिन श्रम विभाग प्रबन्धन के पक्ष में क़ानून की मनमानी व्याख्या करके नंगा हो गया है। असल में यूनियन तो पहले ही श्रम आयुक्त के ऑफ़िस से स्वीकृति हासिल कर चुकी थी। चूँकि यूनियन अपने अधिकारों को लेकर सक्रिय थी और अब उसने ठेका मज़दूरों के अधिकारों की बात करते हुए एक क़दम आगे बढ़ाया तो प्रबन्धन इस पहलक़दमी को कुचलने और इस बहाने यूनियन को ख़त्म करने की फ़िराक़ में है, क्योंकि प्रबन्धन और श्रम विभाग दोनों जानते हैं कि अगर यह क़दम एक जगह कामयाब हो जाता है तो बात सिर्फ़ एक कारख़ाने तक नहीं रुकेगी।

सत्ता में आने पर हरियाणा में डबल इंजन की भाजपा सरकार भी बचे-खुचे श्रम क़ानूनों को ख़त्म करने पर तुली हुई है। नये लेबर कोडों में ठेका मज़दूरों के यूनियन बनाने के अधिकार पर भी हमला किया गया है, ताकि मज़दूरों को मालिकों के साथ सामूहिक सौदेबाज़ी के अधिकार से अधिकतम सम्भव सीमा तक वंचित किया जा सके। श्रम विभाग भी मज़दूरों का पक्ष न लेकर कम्पनी प्रबन्धन के मंसूबों को पूरा करने का काम कर रहा है। औपचारिक मज़दूरों में संगठित मज़दूरों की संख्या घटती जा रही है और औपचारिक मज़दूरों के मुकाबले अनौपचारिक मज़दूरों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। यूनियनों के रूप में संगठित मज़दूरों की संख्या हर जगह घटती जा रही है। इस तरह मालिकों को श्रम अधिकारों से वंचित सस्ते और असुरक्षित मज़दूर आसानी से मिलते हैं जिससे मालिक मनमाने नियमों व मनमाने वेतन पर ग़ुलामों की तरह श्रमशक्ति को निचोड़कर मुनाफ़ा पीटने में कामयाब होता है। कोरोना के दौर में छँटनी का सबसे ज़्यादा शिकार ठेका मज़दूर ही हुए हैं।

यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि अब सिर्फ कारख़ाना-आधारित आन्दोलनों से मालिकों के वर्ग को पीछे नहीं धकेला जा सकता है। इसके लिए सेक्टरगत यूनियन और इलाक़ाई यूनियनों के तहत अनौपचारिक-असंगठित मज़दूरों की विशाल आबादी को साथ में लाना ही होगा तभी जाकर कारख़ानों के मज़दूरों की यूनियनों को बचाया, बनाया और मज़दूरों के पक्ष में असरदार तरीके से चलाया जा सकता है और पूँजी के बढ़ रहे हमलों से मज़दूरों के हितों की रक्षा की जा सकती है। सभी मज़दूरों, मज़दूर संगठनों, यूनियनों, इंसाफ़पसन्द और तर्कशील नागरिकों और जनवादी व नागरिक अधिकार संगठनों, मीडियाकर्मियों को इस मुद्दे पर बेलसोनिका के साथ खड़े होकर कम्पनी प्रबन्धन, श्रम विभाग और हरियाणा सरकार की कार्रवाई का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। इस विरोध-प्रदर्शन को प्रतीकात्मक धरनों, प्रदर्शनों, ज्ञापनों से आगे बढ़ाकर बड़ी मज़दूर-मेहनतकश और न्यायशील आबादी के बीच सही वैचारिक समझ के आधार पर जुझारू और व्यापक रूप देना होगा।

'भारत जोड़ो यात्रा' और उसपर लहालोट मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी

● भारत

कांग्रेस पार्टी भारत में सबसे पुरानी पार्टी है। भाजपा के उभार के बाद से कांग्रेस लगातार सिमटती हुई-सी प्रतीत हो रही थी। पर बीते कुछ महीने में कांग्रेस फिर से राहुल गाँधी के नेतृत्व में ख़ुद को कुछ सुदृढ़ बनाते हुए दिख रही है, जिसका प्रमुख कारण है 'भारत जोड़ो यात्रा'। 'भारत जोड़ो यात्रा' 150 दिन के लिए शुरू की गयी यात्रा थी जिसके तहत इन 150 दिनों में कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक पैदल यात्रा निकाली गयी। लेख लिखे जाने तक 12 राज्यों से गुज़रकर यह यात्रा अपने अन्तिम चरण में कश्मीर तक पहुँच चुकी है। इस यात्रा का मक़सद देश में चल रही नफ़रत की राजनीति, महँगाई, बेरोज़गारी को समाप्त करना बताया जा रहा है। जिन राज्यों से यह यात्रा गुज़री, हज़ारों लोगों के साथ-साथ अन्य पार्टियों के नेताओं ने भी इसे समर्थन दिया। साथ ही राहुल गाँधी ने भी इस दौरान खुलकर भाजपा, महँगाई-बेरोज़गारी और अदानी-अम्बानी के ख़िलाफ़ बात की। इसके अलावा राहुल गाँधी की छवि को बदलने के लिए भी योजनाबद्ध तरीके से उनका प्रचार-प्रसार किया गया। सोशल मीडिया से लेकर हर जगह उन्हें एक शक्तिशाली नेता के तौर पर पेश किया गया। दिखाया गया कि कैसे ठण्ड में भी राहुल गाँधी सिर्फ एक टी-शर्ट में यात्रा में चल रहे हैं या फिर बारिश में भी भाषण दे रहे हैं या लोगों से सीधा जाकर मिल रहे हैं। कुल मिलाकर देश की राजनीति में कांग्रेस को फिर से ज़िन्दा करने की कोशिश की जा रही है। पर सवाल उठता है कि क्या जनता को इससे कुछ हासिल होगा? क्या इससे कोई बदलाव होगा?

कांग्रेस या इस यात्रा के विस्तार में जाने से पहले ज़रा भारत के तमाम प्रगतिशील वामपन्थी बुद्धिजीवी साहित्यकारों की बात कर लें, जिन्होंने इस यात्रा का खुलकर समर्थन किया। हमारे इन बुद्धिजीवियों को फ़ासीवाद से लड़ने के लिए राहुल गाँधी ही सबसे सक्षम नेता लग रहे हैं। इनका यह मानना है कि आज मोदी से लड़ने के लिए देश स्तर पर जनता की एकजुटता नहीं है और राहुल गाँधी लोगों को जोड़ने का काम कर रहे हैं, तो हमें उनका समर्थन करना चाहिए। इसमें कई बड़े-बड़े नाम शामिल है जिन्हें प्रगतिशील माना जाता है। अब ये बेचारे ख़ुद तो कभी जनता के बीच जाते नहीं, ना उनका सुख-दुख समझते हैं। हाँ, कभी-कभी जन्तर-मन्तर पर विरोध प्रदर्शनों में शामिल हो जाते हैं या फिर सोशल मीडिया पर क्रान्ति के सिद्धान्त गढ़ते हैं। लुब्बेलुआब यह कि ये हमेशा जनता पर एकजुट ना होने का ठीकरा फोड़ते हैं और फिर किसी बुर्जुआ पार्टी के पिछलग्गू बनकर अपनी बुद्धि उन्हीं के प्रचार के लिए इस्तेमाल करते हैं। साथ ही उस पार्टी के कुकर्मों को भी बड़े शातिराना तरीके से छिपाने का काम भी करने लगते हैं। इसी कारण इनको कभी केजरीवाल फ़ासीवाद-विरोधी योद्धा लगता है, तो कभी लालू, तो कभी ममता। भाजपा के ख़िलाफ़ कोई भी बोले तो तुरन्त पराजयबोध से ग्रस्त और निष्क्रिय पड़े इन बुद्धिजीवियों की आँखों में चमक आ जाती है।

हम क्यों कह रहे हैं कि कांग्रेस की इस यात्रा से देश की आम जनता को कुछ हासिल नहीं होगा, इसे समझने के लिए आइए थोड़ा पीछे चल कर कांग्रेस के कारनामों पर नज़र डालते हैं। कांग्रेस भारतीय पूँजीपति वर्ग की सबसे पुरानी और सबसे वफ़ादार पार्टी है। जब देश आज़ाद हुआ था, तब भारत का पूँजीपति वर्ग इतना ताक़तवर नहीं था कि अपने दम पर पूँजीवाद के विकास के लिए उद्योगों का ताना-बाना खड़ा कर सके। उनके पास आरम्भिक पूँजी और तकनीक भी सीमित थे। इसे पूरा करने के लिए ही मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया गया। नेहरू का 'समाजवाद' यही था। समाजवाद के नाम पर जनता की गाढ़ी कमाई को बटोरकर बुनियादी ढाँचागत उद्योग जैसे इस्पात के कारखाने, रेल, यातायात, परिवहन, बिजली पैदा करने के सार्वजनिक उपक्रमों को खड़ा किया गया और उनका पूरा लाभ पूँजीपतियों को सस्ती दरों पर उपलब्ध कराया गया। साथ ही उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र के हाथों में रखा गया जिससे कि उसे मुनाफ़ा जल्द हासिल हो सके। इस तरह शुरुआती दौर में कांग्रेस ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम पर पूँजीपतियों का विकास किया। राजकीय इज़ारेदार पूँजीवाद के ढाँचे में लगातार बढ़ते संकट के कारण 1991 में कांग्रेस ने नवउदारवाद की नीतियों को लागू करने की शुरुआत की। उस समय 'ट्रिकल डाउन थ्योरी' के माध्यम से यह समझाया गया कि नव उदारवादी नीतियों के लागू होने के बाद विकास ऊपर से होते हुए नीचे तक पहुँचेगा, समाज के शिखर पर यानी अमीरों के पास समृद्धि आयेगी तो वह रिस-रिसकर जनता तक भी पहुँच जायेगी। पर हुआ इसका ठीक उल्टा। नीचे की आबादी के पास जो कुछ भी बचा खुचा था उसे निचोड़कर ऊपर के पूँजीपतियों तक पहुँचाया गया। आज मोदी सरकार जिस तरह सार्वजनिक उपक्रमों को औने-पौने दामों में धड़ल्ले से पूँजीपतियों को बेच रही है, उसकी शुरुआत कांग्रेस ने ही नवउदारवाद-निजीकरण की नीतियों के माध्यम से की थी।

नफ़रत को मिटाने की बात करते हुए आज कांग्रेस ख़ुद को धर्मनिरपेक्ष बता रही है पर जब 1992 में बाबरी मस्जिद का विध्वंस किया गया था उस समय केन्द्र में कांग्रेस ही सत्ता में थी। नफ़रत फैलाने के सबसे बड़े कारोबारी आरएसएस के प्रति कांग्रेस का रुख हमेशा से समझौतापरस्त ही रहा है और आज भी कांग्रेस वक़्तन-ज़रूरतन नर्म हिन्दुत्व का कार्ड खेलती रहती है। इस यात्रा के दौरान राहुल गाँधी का मन्दिरों में जाकर सारे कर्मकाण्ड करना भी यही दर्शाता है। आरएसएस जब भी लव जिहाद, धर्मान्तरण आदि के मुद्दे उठाता है, तो उन पर भी कांग्रेस चुप ही रहती है। इनके नेताओं ने तो राम मन्दिर के निर्माण के लिए चन्दा जुटाने का अभियान तक चलाया था। एन.आर.सी, दिल्ली दंगों, धारा 370 को समाप्त करना या अन्य ऐसे मुद्दों पर आम तौर पर कांग्रेस या तो चुप रहती है या सिर्फ़ बयानबाज़ी तक सीमित रहती है। यही इनकी धर्मनिरपेक्षता की असलियत है।

कांग्रेस के इतिहास और नफ़रत मिटाओ जैसे जुमलों की सच्चाई जानने के बाद एक निगाह डालते हैं उन राज्यों की स्थिति पर जहाँ कांग्रेस की सरकार है। सेण्टर फॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकॉनमी (सीएमआईई) के हालिया आँकड़ों के अनुसार बेरोज़गारी दर के मामले में राजस्थान देश में दूसरे स्थान पर है। राजस्थान में बेरोज़गारी दर 28.50 दर्ज की गयी है। बेरोज़गारों ने सर्वाधिक आत्महत्या भी राजस्थान में ही की है। वहीं छत्तीसगढ़ में पूँजीपतियों के विकास के लिए कांग्रेस पूरी तरह समर्पित है। इसी कारण आदिवासियों को ज़मीन से उजाड़ने, नकली एनकाउण्टर करने, आवाज़ उठाने वालों को जेल में डालने का काम वहाँ पूरी तेज़ी से जारी है। देश के सबसे पुराने अछूते जंगलों में से एक, हसदेव अरण्य के हज़ारों एकड़ का इलाक़ा कटाई और खदानों के लिए अडाणी को सौंपने का काम छत्तीसगढ़ की कांग्रेस सरकार ने ही किया है। साथ ही नज़र डालते चलते हैं कांग्रेस के घोटालों की सूची पर, जो आज़ादी के बाद से ही जारी थे। इसके विस्तार में ना जाते हुए हम बस चन्द एक नाम ही गिना सकते हैं, अन्यथा बिगुल के दो-तीन पन्ने सारे नाम गिनाने में ही भर जायेंगे। 1948 में जीप घोटाले से कांग्रेस के घोटालों की शुरुआत हो चुकी थी। राजीव गाँधी के समय में बोफ़र्स घोटाला हुआ। 2005 में स्कॉर्पियन पनडुब्बी घोटाला हुआ। कांग्रेस नेतृत्व के ख़ास रहे महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री अन्तुले तो भ्रष्टाचार के पर्याय ही बन चुके थे। मनमोहन सिंह के शासन के दौरान कॉमनवेल्थ गेम्स, 2जी घोटाले, अगस्ता वेस्टलैंड व कोयला घोटाले में हज़ारों करोड़ की हेराफेरी हुई। हुआ। ये तो चन्द उदाहरण मात्र हैं। अब सबसे महत्वपूर्ण बात पर आते हैं कि क्यों कांग्रेस पूँजीपतियों की पार्टी है? इसका एक बिल्कुल साफ़ पैमाना यह है कि कांग्रेस को पूँजीपति वर्ग से फ़ण्ड मिलता है। 2019-20 में कांग्रेस को चुनावी ट्रस्टों से क़रीब 139 करोड़ रुपये मिले थे। यह बेशक़ पहले से बहुत कम हुआ है क्योंकि इस समय देश के पूँजीपति वर्ग को फ़ासीवादी मोदी सरकार की ज़्यादा ज़रूरत है और इसलिए कारपोरेट फ़ण्डिंग का 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा भाजपा के पास जा रहा है। लेकिन कांग्रेस भी हमेशा पूँजीपतियों के धनबल के बूते ही चली है। यह सिलसिला आज़ादी के पहले से ही जारी है। अब इससे यह भी समझा जा सकता है कि 2024 में कांग्रेस अगर चुनाव जीत भी जाती है, जिसकी तैयारी के लिए भारत जोड़ो यात्रा निकाली जा रही है, तब भी आर्थिक नीतियाँ उन्नीस-बीस के अन्तर से वही लागू की जायेंगी जो भाजपा आज कर रही है, और जिसकी शुरुआत कांग्रेस की सरकार ने ही की थी।

भविष्य के लिए राहुल गाँधी ने अपना आर्थिक मॉडल भी रिज़र्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर रघुराम राजन से बातचीत में बता दिया था। वह मॉडल है चीन का मॉडल! राहुल गाँधी कहते हैं कि वह पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ नहीं हैं, बल्कि मोदी सरकार द्वारा कुछ पूँजीपतियों को प्राथमिकता देने, यानी भ्रष्ट किस्म के पूँजीवाद के ख़िलाफ़ हैं, जो सभी पूँजीपतियों को बराबर अवसर नहीं देता। गाँधी ने राजन से साफ़ कहा कि वह भारत को दुनिया की फ़ैक्ट्री बनाना चाहते हैं और इसके लिए भारत में चीन से मुक़ाबला करने का माद्दा पैदा करना होगा और उसके लिए उसे चीन के समान आर्थिक नीतियाँ अपनानी होंगी। लेकिन वे नीतियाँ क्या हैं? वे हैं मज़दूरों के अमानवीय शोषण, उनके बर्बर दमन की नीतियाँ और उन्हें यूनियन बनाने से लेकर अपने जनवादी अधिकारों से पूरी तरह वंचित कर दिये जाने की नीतियाँ। चीन की नकली "समाजवादी" सत्ता ने जिस प्रकार मज़दूरों का दमन किया है, वैसा तो किसी खुले तौर पर पूँजीवादी देश ने भी नहीं किया है। राहुल गाँधी अगर चीन के मॉडल को भारत में लागू करने की बात कर रहे हैं, तो आम मज़दूरों और मेहनतकशों को यह समझ लेना चाहिए कि कांग्रेस के सम्भावित राज में उनके लिए क्या रखा है।

इसलिए राहुल गाँधी के नेतृत्व में यदि कांग्रेस या किसी गँठजोड़ की सरकार आती भी है, तो वह फ़ासीवादी ज़ोर-ज़बर्दस्ती आदि में बेशक मोदी सरकार से भिन्न हो सकती है, खुले तौर पर दंगाई की भूमिका निभाने का काम भी सम्भवत: वह न करे, लेकिन जहाँ तक पूँजीपरस्त आर्थिक नीतियों का प्रश्न है, कोई ज़्यादा अन्तर नहीं आने वाला है। यदि सारे पूँजीपतियों को भी मज़दूरों को लूटने का बराबर अवसर मिलने लगा जाय तो भी इससे हम मज़दूरों-मेहनतकशों के जीवन में क्या फ़र्क़ आयेगा?

साथ ही, राहुल गाँधी अगर देश के छोटे और मँझोले पूँजीपतियों की हिमायती कुछ नीतियों को भी ले आयें तो इससे भी मेहनतकश जनता को कुछ नहीं मिलने वाला है। उल्टे धन्धा करने की जो सहूलियत दी जाती है, उसका तो मज़दूर वर्ग पर और भी बुरा असर पड़ता है क्योंकि ये छोटे मालिक और भी ज़्यादा भयंकर तरीके से मज़दूरों को निचोड़ने का काम करते हैं।

इसलिए प्यार-मुहब्बत फैलाने और लोगों के बीच नफ़रत ख़त्म करने की तमाम बातों के गुलाबी लिफ़ाफ़े के अन्दर कांग्रेस का नेतृत्व भी जो नीतियाँ प्रस्तावित कर रहा है, वे एक अलग तरीक़े से पूँजीपति वर्ग की ही सेवा करने वाली नीतियाँ हैं। यह समझने में बिल्कुल ग़लती नहीं करनी चाहिए। वजह यह है कि कांग्रेस भी पूँजीपति वर्ग की ही पार्टी है। इसलिए मोदी सरकार के नौ सालों में बेरोज़गारी, ग़रीबी और महँगाई से त्रस्त जनता का एक हिस्सा बेशक़ भारत जोड़ो यात्रा की ओर आकर्षित हुआ है, लेकिन सच्चाई यह है कि यह भी विकल्पहीनता की त्रासदी है। जनता के पास कोई क्रान्तिकारी विकल्प नहीं है। इसलिए हमें इस सवाल पर सोचना होगा कि उस क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण किस तरह किया जाये, किस तरह मेहनतकश वर्गों की नुमाइन्दगी करने वाली एक क्रान्तिकारी मज़दूरी पार्टी को खड़ा किया जाये। यह समझ लेना चाहिए कि 2024 के चुनावों में यदि कांग्रेस जीत भी जाये, जिसकी गुंजाइश अभी कम ही है, या कांग्रेस के समर्थन से कोई संयुक्त मोर्चे की सरकार बन जाये, तो भी आर्थिक नीतियों के मामले में मज़दूर वर्ग के लिए ऐसी किसी सरकार के आने से कोई गुणात्मक अन्तर नहीं होगा। आर्थिक संकट के दौर में ऐसी कोई नये सिरे से भाजपाई फ़ासीवाद के उभार की ज़मीन तैयार करेगी। ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूर वर्ग को अपने आपको संगठित करने और प्रतिरोध करने के लिए कुछ समय की मोहलत मिल सकती है क्योंकि ऐसी सरकारों के अपने आन्तरिक अन्तरविरोध भी होते हैं, जो मज़दूर वर्ग के लिए एक स्पेस पैदा करते हैं। लेकिन ऐसा होने की भी कोई गारण्टी नहीं है क्योंकि प्रतिक्रिया के समूचे दौर में पूँजीपति वर्ग की कोई भी पार्टी राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही तौर पर प्रतिक्रियावादी और मज़दूर-विरोधी रुख़ अपनाने को बाध्य होती है। दूसरे, इस मोहलत का फ़ायदा भी मज़दूर वर्ग तभी उठा सकता है, जब वह तमाम क़िस्म के उदारवादी विभ्रमों से पूरी तरह मुक्त हो।

2002 गुजरात दंगों का प्रेत मोदी-अमित शाह को चैन की नींद सोने नहीं देगा

बीबीसी डॉक्युमेण्ट्री पर प्रतिबन्ध मोदी सरकार की घबराहट को दिखाता है

• लता

"तुम अगर इतिहास पर पिस्तौल से गोली चलाओगे तो भविष्य तुम पर तोप से गोले बरसायेगा" – दाग़िस्तानी कवि रसूल हमज़ातोव ने लिखा है। फ़ासिस्ट मोदी सरकार दंगों, हत्याओं, बलात्कारों और दमन से भरे अपने ख़ूनी, काले, बर्बर और वहशी इतिहास पर पिस्तौल से गोलियाँ दाग रही है। उसे ख़त्म करके उसकी जगह एक साफ़-सुथरा चमकता इतिहास पेश करना चाहती है जिसमें हत्यारे, बलात्कारी, चोर, भ्रष्टाचारी और व्यभिचारी लोग लोकनायक, आदर्शवादी, जनसेवक और शहीद नज़र आयें। लेकिन मोदी और भाजपा इतिहास पर चाहे जितने प्रहार कर लें, वे इस नियम का अपवाद नहीं बन सकते।

यही वजह है कि गुजरात 2002 के क़त्लेआम और उसके बाद जारी दंगों में नरेन्द्र मोदी की राज्य सरकार की भूमिका के गवाह, सुराग़ और सबूतों को मिटाने के जितने भी प्रयास किये जायें, यह भूत की तरह मोदी और भाजपा का पीछा नहीं छोड़ता। हाँ, यह अलग बात है कि चीख-चीखकर गवाही देने और सबूत पेश करने के बाद भी "न्याय की देवी" ने अपनी आँखों पर "निष्पक्षता" की बँधी पट्टी के बूते सभी सच्चाइयों से आँख मूँद, सभी गवाहों और सबूतों को ताक पर रखकर 24 जून 2022 को नरेन्द्र मोदी को सभी आरोपों से बरी कर दिया है। वैसे एक बुर्जुआ न्यायपालिका से बहुत उम्मीद भी नहीं की जानी चाहिए और वह भी फ़ासिस्ट दौर में जब देश के सभी संस्थानों का तेज़ी से भगवाकरण हो रहा है। लेकिन इतिहास ज़िद्दी होता है। दबाये जाने पर एक अड़ियल की तरह बार-बार सामने आकर खड़ा हो जाता है।

एक बार फिर 2002 के गुजरात दंगों पर बनी बीबीसी की डाक्युमेंट्री ने गुजरात दंगों में मोदी और मोदी सरकार की भूमिका पर कई सवाल उठाये हैं। लम्बे समय से देश के कई पत्रकारों ने, सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की जन अदालतों और जाने-माने नागरिकों के जाँच आयोगों ने मोदी के नेतृत्व वाली गुजरात सरकार पर दंगे भड़काने, आयोजित करने और दंगों के दौरान दंगाइयों को खुली छूट देने के गम्भीर आरोप लगाये हैं। चाहे एहसान जाफ़री का मामला हो, बिलकिस बानो, गुलबर्ग सोसायटी, नरोदा पाट्या या बेस्ट बेकरी मामला हो, सभी में पुलिस अधिकारियों की निष्क्रियता या कई मामलों में दंगाइयों की मदद के पूरे सबूत मौजूद हैं लेकिन न्याय नहीं मिला। सबसे जघन्य हत्याकाण्डों में नरोदा पाट्या की घटना है जिसमें माया कोदनानी, कृपाल सिंह छाबड़ा और बाबू बजरंगी प्रमुख अपराधी थे। माया कोदनानी और कृपाल सिंह पर भीड़ को भड़काने, आक्रामक और उत्तेजक भाषण देने का तथा मुस्लिम इलाकों में ले जाने का आरोप है। नरोदा पाट्या में ही मुस्लिम महिला के गर्भ को चीर कर उसमें से अजन्मे बच्चे को निकाल कर चारों ओर दिखाया गया था और उसके बाद महिला का भी क़त्ल कर दिया गया था। माया कोदनानी, कृपाल सिंह छाबड़ा और बाबू बजरंगी को 2012 में आजीवन कारावास की सज़ा भी हुई। लेकिन माया कोदनानी और कृपाल सिंह छाबड़ा को 2018 में बरी कर दिया गया और बाबू बजरंगी की सज़ा कम कर दी गयी। अभी 25 जनवरी को, यानी गणतंत्र दिवस के एक दिन पहले गुजरात दंगों के लिए सज़ा काट रहे 22 और अपराधियों को बरी कर दिया गया। मोदी सरकार इन्सानियत को शर्मसार करने वाले हत्यारों, बलात्कारियों और लुटेरों को स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर आज़ाद करने की नयी शर्मनाक परम्परा क़ायम कर रही है। 15 अगस्त 2022 को बिलकिस बानो मामले के 11 अपराधियों को रिहा किया गया था।

सर्वहारा वर्ग के लिए इस अन्याय और उत्पीड़न से परिचित होना बेहद ज़रूरी है। जब तक सर्वहारा वर्ग सभी शोषित-उत्पीड़ित जनों के लिए आवाज़ नहीं उठाता, तब तक वह पूँजीपति वर्ग को चुनौती देने की कुव्वत रखने वाला राजनीतिक वर्ग नहीं बन सकता है। धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा और राष्ट्र के नाम पर किये गये सभी अन्यायों के ख़िलाफ़ हम नहीं बोलेंगे तो हम भी हमेशा शोषित-दमित होने को अभिशप्त होंगे। इसलिए 2002 में गुजरात में व्यापक अल्पसंख्यक मेहनतकश जनता के साथ जो बर्बर कृत्य हुआ, उसके ख़िलाफ़ बोलना और इंसाफ़ के लिए आवाज़ उठाना हम मज़दूरों का फ़र्ज़ है।

मार्च 2002 में गुजरात की सड़कों पर तीन दिनों तक बेगुनाह स्त्री-पुरुषों और मासूम बच्चों का ख़ून पानी की तरह बहाया जाता रहा। तीन दिनों में लगभग 2000 लोगों की जानें गयीं। इसके बाद मौत, आगज़नी, बलात्कार, लूट, तबाही का कारोबार अगले तीन महीनों तक चलता रहा। पुलिस और प्रशासन मूक दर्शक बने रहे। घायल, मरते और घरों से बेदखल लोगों की कहीं कोई सुनवाई नहीं थी। सड़कों पर मुस्लिम औरतों के साथ बलात्कार किया गया, गर्भवती औरतों को भी नहीं बख़्शा गया। इतना ही नहीं गर्भ से अजन्मे बच्चों तक को निकालकर मारा गया। ऐसी हज़ारों घटनाएँ बिखरी हुई हैं उन काले दिनों के इतिहास में। इतनी हैवानियत, दरिन्दगी, बर्बरता और क्रूरता केवल नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली राज्य सरकार की नाकामियों की वजह से नहीं हुई थी बल्कि इन सबके पीछे मोदी सरकार की साज़िश थी जो उसकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से जाकर जुड़ती थी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा में पले-बढ़े और उसके प्रचार-प्रसार और विस्तार में लगे नरेन्द्र मोदी को प्रधानमंत्री की कुर्सी हासिल करनी थी। 1990 के दशक में आधिकारिक तौर पर नवउदारवाद और खुले बाज़ार की नीतियों की शुरुआत हुई। लेकिन संकट के जवाब में शुरू की गयी इन नीतियों ने पूँजीवाद के संकट को अन्तत: और भी गहरा कर दिया। इन नीतियों के परिणामस्वरूप बेरोकटोक निजीकरण, ठेकाकरण, ग़रीबी, भुखमरी, और बेरोज़गारी का बढ़ना तय था। और जीने के मूलभूत अधिकारों तक से वंचित होने के बाद लोगों का ग़ुस्सा आन्दोलनों के रूप में सड़कों पर फूट पड़ना भी तय था। ऐसी स्थिति से बचने के लिए पूँजीपति वर्ग को किसी "मज़बूत नेता" की ज़रूरत होती है, जो मज़दूरों-मेहनतकशों का नंगा दमन कर सके और जो फ़ासीवादी धार्मिक उन्माद पैदा करके जनता को बाँट सके।

मोदी का 2014 में चुना जाना और 2019 में दोबारा चुना जाना वास्तव में पूँजीपति वर्ग के एकजुट समर्थन की वजह से ही हुआ क्योंकि उसे पूरे देश में गुजरात जैसा धन्धा करने की सहूलियत, मज़दूरों-मेहनतकशों पर फ़ासीवादी नियंत्रण और धार्मिक फ़ासीवादी उन्माद में बहकर बँटी हुई आम जनता चाहिए थी।

27 फरवरी 2002 को गोधरा की बर्बर घटना के बाद गुजरात की मोदी सरकार ने मारे गये तीर्थयात्रियों और कारसेवकों के शव की अहमदाबाद में यात्रा निकालकर पूरे प्रदेश में भयंकर धार्मिक उन्माद का माहौल बनाया। इसमें मोदी की सरकार की सीधे-सीधे भूमिका थी। मोदी सरकार और संघ परिवार ने दंगा फैलाने और मुसलमानों का क़त्लेआम करने के लिए इस घटना का इस्तेमाल किया।

नरेन्द्र मोदी ने 27 फ़रवरी की रात अपने बंगले पर एक बैठक बुलायी। यह बैठक बेहद विवादित है क्योंकि मोदी और अमित शाह ऐसी किसी भी बैठक के होने से साफ़ इन्कार करते हैं। इस बैठक में पुलिस और प्रशासन के आला अफ़सर शामिल थे। गोधरा काण्ड की रात अपने बंगले पर बुलायी इस बैठक में मोदी ने पुलिस और प्रशासन से साफ़ कहा था कि "हिन्दुओं को अपना ग़ुस्सा निकालने दो। उनके रास्ते में कोई नहीं आयेगा। मुसलमानों को कारसेवकों पर हमले का सबक सिखाया जाना है।" ऐसी किसी बैठक की जानकारी सबसे पहले ख़ुद मोदी के मंत्री हरेन पाण्ड्या ने दी थी। हरेन पाण्ड्या इस जानकारी को न्यायमूर्ति वी.के. कृष्णा अय्यर की अध्यक्षता में बनी सरोकारी नागरिक अदालत के साथ साझा करने को तैयार थे। यहाँ से शुरू होता है मोदी और अमित शाह के काले कारनामों का एक और बेहद ख़तरनाक और शातिराना अध्याय। इस बैठक की गवाही आईपीएस संजीव भट्ट ने भी दी है। ख़बर देने के चन्द महीनों के बाद हरेन पाण्ड्या की बेहद सन्दिग्ध स्थिति में हत्या हो गयी। और संजीव भट्ट 20-25 साल पुराने हिरासत में मौत के मामले में उम्रक़ैद की सज़ा काट रहे हैं। दंगों में हताहत होने वाले लोग जब पुलिस और प्रशासन से मदद की गुहार लगा रहे थे तो उन्हें समझ आ रहा था कि पुलिस उनकी नहीं दंगाइयों की मदद कर रही है।

इस दौरान गुजरात में जो दर्दनाक हत्याकाण्ड हुए वे दिल दहला देने वाले हैं और दिखलाते हैं कि फ़ासीवादी बर्बरता क्या होती है।

सरदारपुर में दंगाइयों ने 33 लोगों को ज़िन्दा जला दिया था जिसमें 20 से अधिक बच्चे और औरतें थीं। 2011 में विशेष न्यायालय ने 31 लोगों को इसके लिए ज़िम्मेदार पाया था और उन्हें आजीवन कारावास की सज़ा सुनायी थी। इंसानियत के ख़िलाफ़ किये जघन्य अपराध के लिए इससे कम सज़ा कुछ और नहीं होनी चाहिए। लेकिन 2016 में 17 अपराधियों को बरी कर दिया गया।

नरोदा पाट्या में इन्सानियत को शर्मसार करने का काम एक फ़ासीवादी महिला नेता के नेतृत्व में हो रहा था। भाजपा सरकार में मंत्री माया कोदनानी साम्प्रदायिक भावना भड़काने वाला भाषण देते हुए एक बड़ी भीड़ को अहमदाबाद के नरोदा पाट्या इलाके में ले गयी। बाबू बजरंगी और उन्मादियों की भीड़ ने वहाँ 97 बच्चों, औरतों, बुज़ुर्गों और पुरुषों को मारा, जलाया, बलात्कार किया। घरों में आग लगायी, लूट-मार किया। बच्चों, औरतों, बुज़ुर्गों यहाँ तक के अजन्मे बच्चे की हत्या के लिए ज़िम्मेदार महिला, माया कोदनानी 2007 में फिर से गुजरात के महिला व बाल विकास मंत्रालय की मंत्री बनी। 2012 में दंगा भड़काने और लोगों की हत्या के लिए ज़िम्मेदार कोदनानी को 28 साल की सज़ा हुई और बाज़ू बजरंगी को उम्र कैद की सज़ा हुई। 2018 में इनको सभी आरोपों से बरी कर दिया गया और बाबू बजरंगी की सज़ा कम कर दी गयी।

बिलकिस बानो गुजरात नरसंहार की शिकार महिला है। फ़ासीवादी दंगाइयों ने 3 मार्च 2002 को इसके परिवार के 15 सदस्यों में से 14 को उसकी आँखों के सामने मार डाला। महिलाओं के साथ बलात्कार किया फिर उन्हें मार डाला। स्वयं बिलकिस बानो के साथ बेहद बर्बरता के साथ गैंग रेप किया गया। उस समय बिलकिस बानो 19 साल की थी और गर्भवती थी। इन अपराधियों ने दरिन्दगी की सारी सीमा पार करते हुए बिलकिस बानो की तीन साल की मासूम बेटी को उसकी गोद से छीनकर पत्थर पर पटककर मार डाला। बिलकिस बानो बेहोश हो गयी और उसे मरा समझकर इन फ़ासीवादी दरिन्दों ने उसे छोड़ दिया। 2022 में 15 अगस्त के दिन उन 11 बर्बर अपराधियों को गुजरात की भाजपा सरकार ने न केवल रिहा किया बल्कि जेल के बाहर विश्व हिन्दू परिषद और आरएसएस के कार्यकर्ताओं ने इन हत्यारों और बलात्कारियों के चरण स्पर्श कर, मिठाई खिलायी और फूल-मालाओं से उनका स्वागत किया। स्वागत करने वालों में कई महिलाएँ भी शामिल थीं।

हनुमान टेकरी में बेस्ट बेकरी थी। दंगाइयों ने बेकरी पर हमला बोला और अन्दर मौजूद 14 लोगों को जलाकर मार दिया गया। इस मामले में 17 लोगों को विशेष अदालत ने दोषी पाया और उन्हें उम्र क़ैद की सज़ा सुनायी। बॉम्बे हाई कोर्ट ने इनमें से पाँच को बरी कर दिया।

एहसान जाफ़री की हत्या गुलबर्ग सोसाइटी में हुई थी। यह सोचकर कि सांसद रह चुके जाफ़री के घर उन्हें सुरक्षा मिलेगी, बड़ी आबादी वहाँ एकत्र हुई थी। जाफ़री मदद के लिए सभी पुलिस अधिकारियों और ख़ुद मोदी को फ़ोन मिलाते रहे लेकिन कहीं से कोई मदद नहीं आयी। दंगाइयों की वहशी भीड़ ने उनकी पत्नी ज़किया जाफ़री के सामने एहसान जाफ़री को पहले टुकड़े-टुकड़े किया और फिर जला दिया। उसके बाद पूरी सोसाइटी में आतंक मचाया गया जिसमें 69 लोग मारे गये। औरतों के साथ बलात्कार किया गया, छोटे बच्चों को काट दिया गया। ज़किया जाफ़री मोदी सरकार को ज़िम्मेदार ठहराते हुए सुप्रीम कोर्ट तक अपनी याचिका लेकर गयीं लेकिन पिछले 24 जून को उनकी याचिका ख़ारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने मोदी को सभी आरोपों से बरी कर दिया! फ़ासीवाद के दौर में न्यायपालिका का सच भी मज़दूरों-मेहनतकशों को समझ लेना चाहिए।

बीबीसी की डॉक्युमेण्ट्री कोई क्रान्तिकारी डॉक्युमेण्ट्री नहीं है जो फ़ासीवादी मोदी सरकार और उसकी दंगाई हरक़तों का सही विश्लेषण पेश करे। लेकिन यह कुछ असुविधाजनक सवाल खड़े करती है, जिससे फ़ासीवादी मोदी सरकार और नरेन्द्र मोदी, जो तीन बार प्रधानमन्त्री बनकर नेहरू की बराबरी करने और इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाने की फ़िराक़ में है, के नकली आभामण्डल में

(पेज 10 पर जारी

नौसेना विद्रोह की 77वीं वर्षगाँठ पर

जब नौसैनिकों और मेहनतकश जनता की एकता ने साम्राज्यवाद की नींव हिला दी

● सार्थक

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के पन्नों पर सैकड़ों ऐसे गौरवशाली संघर्ष दर्ज हैं जब देश की मेहनतकश जनता ने सड़कों पर उतरकर न केवल उपनिवेशवाद बल्कि शोषण पर आधारित व्यवस्था के ख़िलाफ़ जुझारू संघर्ष छेड़ा। स्वतंत्रता संग्राम के अन्तिम दौर में मज़दूरों, किसानों और मेहनतकश जनता का जुझारू संघर्ष भी अपने शिखर पर पहुँचा। 1946 में मज़दूरों और किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता को झकझोर कर रख दिया। तेज़ी से फैल रहे इन आन्दोलनों से भावी आज़ाद भारत और आज़ाद पाकिस्तान की शासक पार्टियाँ – कांग्रेस और मुस्लिम लीग - भी थरथरा उठी थीं।

बंगाल में तेभागा किसान विद्रोह, तेलंगाना किसान आन्दोलन, केरल के पुन्नप्रा-वायलार में मज़दूरों का आन्दोलन कुछ ऐसे बेमिसाल आन्दोलन थे जिनमें देश की मेहनतकश जनता ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में संगठित होकर सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ जंग छेड़े थी। देश की मेहनतकश जनता के जुझारू और बहादुराना संघर्षों की कड़ी में 1946 के नौसेना विद्रोह का एक विशेष स्थान है।

नौसेना विद्रोह 18 फ़रवरी, 1946 के दिन बम्बई से शुरू होकर कराची, कलकत्ता, विशाखापत्तनम और रॉयल इण्डियन नेवी के अन्य बन्दरगाहों तक फ़ैल गया। अमानवीय कार्यस्थितियाँ, बुरा खाना, ब्रिटिशों की तुलना में भारतीय नौसैनिकों को कम वेतन मिलना और ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा भारतीयों के साथ नस्ली उत्पीड़न के कारण निचले पायदान पर काम कर रहे भारतीय नौसैनिकों में लम्बे समय से रोष था। आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों की सार्वजनिक सुनवाई ने भी ब्रिटिश सेनाओं में कार्यरत भारतीय सैनिकों के दिलों में देशप्रेम का संचार किया।

17 फ़रवरी 1946 को जब 'एचएमआईएस तलवार' के प्रधान अधिकारी ने भारतीय नौसैनिकों को नस्ली गाली दी तो इस वारदात ने धरातल के नीचे सुलग रही चिंगारी को आग देने का काम किया। कई नौसैनिकों ने विरोध प्रदर्शन करते हुए खाने का बहिष्कार किया और परेड करने से साफ़ मना कर दिया। अगले दिन सभी भारतीय सैनिकों ने प्रधान अधिकारी के आदेशों की साफ़ अवहेलना की। 'एचएमआईएस तलवार' को अपने क़ब्ज़े में लेने के बाद नौसैनिकों ने बम्बई बन्दरगाह के 71 बड़े-छोटे जहाज़ों और तकनीकी व प्रशिक्षण केन्द्रों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। बम्बई में दस हज़ार से ज़्यादा नौसैनिकों ने इस विद्रोह में हिस्सा लिया। इसके साथ ही नौसैनिकों की एक टुकड़ी बम्बई शहर में जाकर आम मेहनतकश जनता का समर्थन भी हासिल करने में कामयाब रही। 22 फ़रवरी को भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में बम्बई में आम हड़ताल का आह्वान किया गया और लाखों की तादाद में मज़दूर और मेहनतकश नौसैनिकों के समर्थन में सड़कों पर उतर आये। साथ ही कराची, कलकत्ता, मद्रास की सड़कों पर भी लाखों मज़दूरों, छात्रों और नौजवानों का जनसैलाब उमड़ पड़ा।

बम्बई बन्दरगाह पर नौसैनिकों ने हड़ताल समिति का चयन किया और मदन मोहन और एम.एस. खान को सरकार और रॉयल इण्डियन नेवी के अधिकारियों तक अपनी माँगें पहुँचाने की ज़िम्मेदारी दी। नौसैनिकों की माँगों में सभी राजनीतिक बन्दियों की रिहाई, आज़ाद हिन्द फ़ौज के बन्दी बनाये गये सभी सैनिकों की रिहाई, विदेशों में कार्यरत सभी भारतीय सैनिकों की वापसी, भारत से सभी ब्रिटिश नागरिकों का निष्कासन, ब्रिटिश और भारतीय कर्मचारियों के बीच के वेतन असमानता को ख़त्म करना, नौसैनिकों के लिए अच्छा खाना, रहने की अच्छी व्यवस्था और अच्छी कार्यस्थितियाँ, नस्ली उत्पीड़न कर रहे सभी अधिकारियों पर सख़्त कारवाई आदि प्रमुख माँगें थीं। नौसैनिकों ने 'एचएमआईएस तलवार' और अन्य जहाज़ों से ब्रिटेन के राष्ट्रीय ध्वज को उतार दिया और कांग्रेस, मुस्लिम लीग और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का परचम बुलन्द किया, जो कि साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में संयुक्त मोर्चा बनाने की माँग के समान था।

बम्बई के नौसैनिकों से प्रेरित होकर 19 फ़रवरी को कराची बन्दरगाह पर भी नौसैनिकों ने विद्रोह का ऐलान किया और कराची बन्दरगाह पर क़ब्ज़ा कर लिया। कराची में नौसैनिकों ने भी अपना माँगपत्र जारी किया जिसमें ज़्यादातर माँगें बम्बई से जारी माँगपत्र से मिलती-जुलती थीं। कराची में भी नौसैनिकों को शहर के आम मेहनतकश जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप से दूर अदन और बहरीन में स्थित रॉयल इण्डियन नेवी के बेतार केन्द्रों ने भी बम्बई और कराची के विद्रोही नौसैनिकों का खुला समर्थन किया। बम्बई के नौसैनिकों के समर्थन में और अपने माँगों को रखते हुए बम्बई में स्थित अँधेरी, कोलाबा और सायन अड्डों के वायुसैनिकों ने भी हड़ताल की घोषणा कर दी।

1945-1946 एक ऐसा दौर था जब भारत में तैनात ब्रिटिश स्थलसेना, वायुसेना और नौसेना में एक बाद एक कई छोटे-बड़े विद्रोह हो रहे थे। इनकी शुरुआत 1945 में रॉयल एयरफ़ोर्स के ब्रिटिश सैनिकों से हुई जिन्होंने

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद जल्द से जल्द वियोजन की माँग को लेकर हड़ताल की। इससे प्रेरित होकर रॉयल इण्डियन एयरफ़ोर्स के सैनिकों ने भी बेहतर कार्यस्थिति और तमाम अन्य माँगों को लेकर हड़ताल कर दी। फ़रवरी 1946 के विद्रोह से पहले भी रॉयल इण्डियन नेवी में 13 हड़तालें, विरोध प्रदर्शन और सामूहिक अवज्ञा की वारदातें घट चुकीं थी। जनवरी में कलकत्ता और जबलपुर में तैनात स्थलसेना की टुकड़ियों में भी बग़ावत की लहर उठी।

हालाँकि इन बग़ावतों को ब्रिटिश सत्ता ने कुछ ही दिनों में कुचल दिया, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं ने ब्रिटिश सत्ता की मदद करके ख़ास भूमिका निभायी, लेकिन इन बग़ावतों ने औपनिवेशिक सत्ता को यह यक़ीन दिला दिया कि अब भारतीय उपमहाद्वीप पर प्रत्यक्ष औपनिवेशिक नियंत्रण असम्भव है। कांग्रेस और मुस्लिम लीग को भी पता था कि पूँजीपति वर्ग के लिए भविष्य में उन्हें भी सत्ता चलानी है और सेना के भीतर पूर्ण अनुशासन और जीहुज़ूरी उनके लिए ज़रूरी है। सेना के भीतर क्रान्तिकारी राजनीति और प्रतिरोध व संगठन की भावना से वे ख़ुद भी डरे हुए थे।

बम्बई में नौसेना विद्रोह को कुचलने के लिए भी जब ब्रिटिश सत्ता ने सेना और पुलिस को आदेश दिया तब भारतीय सैनिकों और पुलिसकर्मियों ने विद्रोही नौसैनिकों पर बन्दूक तानने से साफ़ मना कर दिया। ब्रिटिश सैनिकों की मदद से और कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं के प्रयास से ही विद्रोही नौसैनिकों को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर किया जा सका। 22 फ़रवरी को कराची में और 23 फ़रवरी को बम्बई में नौसैनिकों ने आत्मसमर्पण किया। लेकिन बम्बई और कराची में मज़दूर-मेहनतकश जनता का आन्दोलन लगभग एक सप्ताह तक चलता रहा। सत्ता के बर्बर दमन से बम्बई में ही सरकारी आँकड़ों के अनुसार 236 लोगों की मौत हुई और हज़ारों घायल हुए।

जैसा कि हमने ऊपर बताया, उस समय के शासक वर्ग की दो प्रभुत्वशाली पार्टियाँ – कांग्रेस और मुस्लिम लीग – ने शुरुआत से ही नौसेना विद्रोह का कड़ा विरोध किया था। जल्द ही आज़ाद होने वाले दो देशों की राज्यसत्ताओं की कमान अपने हाथों में लेने जा रही इन दो पार्टियों को यह समझ में आ गया कि सेना में बग़ावत और सैनिकों के जुझारू संघर्ष उनकी अपनी भावी राज्यसत्ता के लिए ख़तरनाक साबित होंगे।। उन्होंने यह भाँप लिया कि सैनिकों की यह बाग़ी प्रवृति सिर्फ़ ब्रिटिश सत्ता तक सीमित नहीं रहेगी और आगे चलकर उन्हें भी इस संकट का सामना करना पड़ेगा। साथ ही लाखों मज़दूरों और नौजवानों का विद्रोह के समर्थन में सड़कों पर उतरना भी कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लिए ख़तरे की घण्टी थी। इसलिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग जहाँ हर मसले पर एक-दूसरे की गर्दन पर सवार रहते थे, नौसेना विद्रोह के मसले पर एक ही पक्ष में खड़े पाये गये। सरदार वल्लभभाई पटेल और मोहम्मद अली जिन्ना ने बयान जारी करते हुए विद्रोही नौसैनिकों को आत्मसमर्पण करने की सलाह दी। महात्मा गाँधी ने भी नौसेना विद्रोह को "अनुशासनहीनता का प्रतीक" बताते हुए इसकी निन्दा की! साथ ही गाँधी ने अरुणा आसफ़ अली की भी भर्त्सना की जो कांग्रेस की एकमात्र बड़ी नेता थीं जिन्होंने विद्रोह का मुखर समर्थन किया था। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के दोग़लेपन से क्रोधित नौसैनिकों ने 'एचएमआईएस तलवार' से कांग्रेस और मुस्लिम लीग के झण्डों को उतार दिया और सिर्फ़ भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का ही परचम बुलन्द रहा। आख़िरकार 23 फ़रवरी के दिन वल्लभभाई पटेल ने हड़ताल समिति के अध्यक्ष एम.एस. खान को आत्मसमर्पण के लिए इस वायदे के साथ मना लिया कि विद्रोही नौसैनिकों पर कोई भी कार्रवाई नहीं होगी। लेकिन आत्मसमर्पण के तुरन्त बाद ही 476 नौसैनिकों को बन्दी बना लिया गया और रॉयल इण्डियन नेवी से उन्हें निष्कासित कर दिया गया। आज़ादी के बाद न ही पाकिस्तानी नौसेना न ही भारतीय नौसेना में इन निष्कासित नैसीनिकों की बहाली हुई। यह आज़ादी से पहले ही भारतीय पूँजीपति वर्ग की आम मेहनतकश जनता से ग़द्दारी की एक पहली बड़ी मिसाल माना जा सकता है।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरुआती दौर से ही सेना में राजनीतिक प्रचार का ज़रूरी काम किया था। जब नौसेना विद्रोह फूट पड़ा तो कम्युनिस्ट पार्टी ने इसे पूर्ण समर्थन दिया और बम्बई, कराची, कलकत्ता और विभिन्न बड़े शहरों में इसके समर्थन में मज़दूरों और नौजवानों को लामबन्द किया। गिरफ़्तार हुए कई नौसैनिकों के पास से कम्युनिस्ट पार्टी का साहित्य भी ज़ब्त किया गया। लेकिन अपनी विचारधारात्मक-राजनीतिक-सांगठनिक कमज़ोरी के कारण कम्युनिस्ट पार्टी नौसेना विद्रोह और उस समय जारी अन्य संघर्षों को पूरे भारत में फैलाने में नाकाम रही। कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सही नेतृत्व की कमी के कारण नौसेना विद्रोह भी तेभागा, तेलंगाना और पुन्नप्रा-वायलार के विद्रोहों की तरह हार के रूप में ही ख़त्म हुआ। इन सभी आन्दोलनों को एक धागे में पिरोकर देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन को संवेग प्रदान करने का सुनहरा मौक़ा कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी विचारधारात्मक, राजनीतिक व सांगठनिक कमज़ोरी के कारण गँवा दिया।

लेकिन, इस हार के बावजूद नौसेना विद्रोह भारतीय जनता के जुझारू आन्दोलनों के इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय के रूप में हमेशा जाना जायेगा जब देशप्रेम से ओतप्रोत हज़ारों सैनिकों ने आम मेहनतकश जनता का समर्थन प्राप्त करते हुए साम्राज्यवाद की नींव हिला दी थी। अपने इस ऐतिहासिक गौरवशाली संघर्ष से सीख लेते हुए आज देश की मेहनतकश जनता को नये सिरे से जुझारू संघर्षों को संगठित करने के कष्टसाध्य काम में जुटना होगा।

अडाणी ही नहीं, पूरे पूँजीवाद की घिनौनी सच्चाई दुनिया के सामने है

(पेज 1 से आगे)

दाम पर ख़रीदकर मुनाफ़ा कमाना। हिण्डेनबर्ग इस प्रकार की 'शॉर्ट सेलिंग' करने से पहले किसी कम्पनी द्वारा शेयर बाज़ार में की जा रही धाँधली पर शोध करती है और यह सुनिश्चित करने के बाद कि उस कम्पनी के शेयर का मूल्य उसके वास्तविक मूल्य से ज़्यादा है, वह अपनी रिपोर्ट सार्वजनिक करती है जिसके नतीजे के रूप में उस कम्पनी के शेयर का मूल्य गिरने लगता है और इस गिरावट का फ़ायदा उठाते हुए वह पहले अधिक दाम पर बेचे गये उसके शेयर को कम दाम पर वापस ख़रीदकर मुनाफ़ा कमाती है। स्पष्ट है कि हिण्डेनबर्ग रिसर्च का मक़सद बड़ी कम्पनियों के घोटालों को उजागर करके मुनाफ़ा कमाना ही है। लेकिन इस प्रक्रिया में आज के दौर में पूँजीवादी लूट-खसोट का एक पहलू हमारे सामने अवश्य आता है।

हिण्डेनबर्ग रिसर्च ने अडाणी समूह की कम्पनियों पर 2 वर्ष तक किये गये अपने शोध की रिपोर्ट में दावा किया है कि **अडाणी समूह की 7 लिस्टेड कम्पनियों के स्टॉक में पिछले 3 वर्षों के दौरान जो औसतन 819 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है वह जालसाज़ी के ज़रिए हुई है।** इस जालसाज़ी का तरीक़ा बताते हुए रिपोर्ट में प्रमाणों के साथ दिखाया गया है कि अडाणी समूह ने 'टैक्स हैवेन' कहे जाने वाले मॉरीशस, साइप्रस, यूएई, सिंगापुर और कैरिबियाई द्वीप समूह के तमाम देशों में फ़र्ज़ी शेल कम्पनियों का जाल बिछाया है जिन्हें गौतम अडाणी का बड़ा भाई विनोद अडाणी नियंत्रित करता है। विदेशों में मौजूद इन फ़र्ज़ी कम्पनियों में ग़ैर-क़ानूनी रूप से अडाणी समूह का ही पैसा लगा है और इसी पैसे से वापस भारत में अडाणी की ही लिस्टेड कम्पनियों के शेयर ख़रीदे जाते हैं और इस प्रकार इन कम्पनियों के शेयर की माँग में बढ़ोत्तरी करके उसके मूल्य को कृत्रिम रूप से बढ़ाया जाता है। भारतीय शेयर बाज़ार के विनियामक सेबी (सिक्योरिटीज़ ऐण्ड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ़ इण्डिया) के नियम के अनुसार किसी लिस्टेड कम्पनी के शेयरों में प्रमोटर्स का हिस्सा 75 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। लेकिन शेल कम्पनियों के उपरोक्त फ़र्ज़ीवाड़े की मदद से अडाणी की 7 लिस्टेड कम्पनियों में अडाणी परिवार की हिस्सेदारी 75 प्रतिशत से कहीं ज़्यादा हो जाती है। यही नहीं अडाणी समूह अपनी कम्पनियों के शेयर के ऊँचे मूल्य और उनकी अच्छी सेहत दिखाकर देशी व विदेशी वित्तीय संस्थाओं से भारी क़र्ज़ा भी लेता रहा है जिसकी राशि उसकी वास्तविक परिसम्पत्तियों के मूल्य की तुलना में कहीं ज़्यादा है। इस प्रकार **अडाणी समूह की कम्पनियों के शेयर के मूल्य उनकी वास्तविक स्थिति को नहीं दर्शाते हैं बल्कि उनकी वास्तविक स्थिति पर पर्दा डालने का काम करते हैं।**

ग़ौरतलब है कि अडाणी समूह के शेयरों में निवेश करने वालों में एलआईसी जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ भी शामिल हैं। **एलआईसी ने अडाणी समूह की कम्पनियों में 74 हज़ार करोड़ रुपये का निवेश किया है। यानी आम जनता अपनी आमदनी में से कटौती करके जीवन बीमा के लिए जो प्रीमियम भरती है उसका अच्छा-ख़ासा हिस्सा अडाणी की ऐसी कम्पनियों में लगा है जिनमें धोखाधड़ी हुई है।** इसी प्रकार अडाणी की कम्पनियों को क़र्ज़ देने वाली वित्तीय संस्थाओं में एसबीआई और पीएनबी जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक भी शामिल हैं। एसबीआई ने अडाणी समूह को 21 हज़ार करोड़ रुपये का क़र्ज़ा दिया है और पीएनबी ने 7 हज़ार करोड़ रुपये का। अगर अडाणी समूह की कम्पनियाँ डूबती हैं तो उसका असर केवल उसकी कम्पनियों और उसके कर्मचारियों पर ही नहीं बल्कि एसबीआई, पीएनबी और एलआईसी जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों पर भी होगा, यानी उसका असर आम जनता की ज़िन्दगी पर भी होगा और पहले से ही मन्दी के ख़तरे से जूझ रही भारतीय अर्थव्यवस्था की अस्थिरता भी और बढ़ेगी।

हिण्डेनबर्ग की रिपोर्ट के बाद जो सच्चाइयाँ उजागर हुई हैं वो केवल अडाणी के ही नहीं बल्कि समूची पूँजीवादी व्यवस्था के लुटेरे चरित्र को एक बार फिर से बेपर्द करती हैं। इतने बड़े घोटाले के सामने आने के बाद यह सवाल उठना लाज़िमी है कि आख़िर **अडाणी जैसा जालसाज़ जब दशकों से यह गोरखधन्धा कर रहा था तब तमाम सरकारी एजेंसियाँ क्या कर रही थीं?** मोदी सरकार के विरोधियों के मामूली मामलों में भी ईडी और सीबीआई जैसी एजेंसियाँ तुरन्त छापा मारने पहुँच जाती हैं, लेकिन कॉरपोरेट इतिहास का सबसे बड़ा घोटाला दशकों से चलता रहा और किसी भी एजेंसी ने चूँ तक नहीं बोली। शेयर बाज़ार की गतिविधियों पर निगरानी करने वाली एजेंसी सेबी ने भी इतने सालों में अडाणी समूह पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं की। ऐसा नहीं था कि अडाणी की करतूतों के बारे में किसी को कोई भनक नहीं थी। हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट में जो आरोप लगाये गये हैं वैसे आरोप पहले भी अडाणी समूह पर लगते रहे हैं, लेकिन उसके बावजूद इस लुटेरे पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी।

सबसे ज़्यादा शर्मनाक बात तो यह है कि सिर से लेकर पाँव तक भ्रष्टाचार में डूबा यह लुटेरा इस देश के प्रधानमंत्री का जिगरी यार है। ग़ौरतलब है कि यह वही प्रधानमंत्री है जिसने सत्ता में पहुँचने से पहले भ्रष्टाचार और काले धन को लेकर बहुत शोर मचाया था और लम्बे-चौड़े वायदे किये थे। यह प्रधानमंत्री निहायत ही बेशर्मी से अपने जिगरी यार के निजी जेट में सवारी करता है और उसको राष्ट्र की समृद्धि का जनक बताकर उसका महिमामण्डन करता है। 'सइयाँ भए कोतवाल, अब डर काहे का!' की कहावत को चरितार्थ करते हुए अडाणी ने ख़ास तौर पर मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद अपनी पूँजी के अम्बार में ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी की है। **कोरोना महामारी के दौरान जब पूरे देश की जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी तब इस लुटेरे ने अपने जिगरी यार की सलाह को शब्दश: मानते हुए आपदा में ज़बर्दस्त अवसर तलाशा और अपनी सम्पत्ति में 8 गुना इज़ाफ़ा कर लिया।**

इस बीच पूरा पूँजीवादी मीडिया इस जालसाज़ लुटेरे को देश का रोल-मॉडल बताता रहा, उसकी कामयाबी की 'गौरव-गाथाएँ' पूरे समाज में सुनियोजित ढंग से फैलायी जाती रहीं। लोगों को बताया जाता रहा कि इस व्यवस्था में कोई भी आदमी अपनी मेहनत और बुद्धि के बूते अमीर बन सकता है। लेकिन अब सच्चाई चीख़-चीख़कर हमें बता रही है कि पूँजीवादी समाज में जिन्हें रोल-मॉडल बताया जाता है उनकी कामयाबी के पीछे भाँति-भाँति की लूट-खसोट छिपी होती है। बैंकों व वित्तीय संस्थाओं में जमा जनता की बचत को ये क़र्ज़ों के रूप में इस्तेमाल करते हुए अपनी पूँजी बढ़ाते हैं। इस पूँजी से कच्चा माल, मशीनें और श्रम-शक्ति ख़रीदते हैं। सरकार से अपनी क़रीबी का फ़ायदा उठाते हुए ये औने-पौने दामों पर ज़मीन, लाइसेंस व विभिन्न प्रकार के ठेके हासिल करते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान मज़दूरों के श्रम को लूटकर ये मुनाफ़ा कमाते हैं। उसके बाद जब कर देने की बारी आती है तो सरकार पर दबाव बनाकर करों में ज़बर्दस्त छूट हासिल करते हैं जिससे आम मेहनतकश जनता पर बोझ बढ़ता है और उसकी आमदनी और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट होती है। इस अपार लूट से भी जब इन लुटेरों को सन्तोष नहीं होता तो वे भाँति-भाँति की तिकड़मों के ज़रिए स्टॉक क़ीमतों व बही-खाते में हेराफेरी करके अपनी लूट के पहाड़ को और ऊँचा करने से भी नहीं चूकते हैं। इस नज़रिए से देखने पर हम पाते हैं कि हिण्डेनबर्ग रिपोर्ट में जो सच्चाइयाँ उजागर हुई हैं वो दरअसल इस व्यवस्था की कुल लूट के आइसबर्ग का टिप मात्र हैं। कुछ लोग इस व्यवस्था को थोड़ा विनियमित करके इसकी लूट पर नकेल कसने की वकालत करते हैं। लेकिन वित्तीय पूँजी के इस मौजूदा युग में पूँजीवादी व्यवस्था इतनी सड़ चुकी है कि यह मानवता के सामने विकल्प के रूप में विभिन्न प्रकार की लूट-खसोट ही दे सकती है। इसलिए आज ज़रूरत इस लुटेरी व्यवस्था में रंगरोगन करके इसे मानवीय रूप देने की नहीं बल्कि इसका पर्दाफ़ाश करते हुए इसे जड़ से उखाड़ फेंकने की है।

बीबीसी डॉक्युमेण्ट्री पर प्रतिबन्ध मोदी सरकार की घबराहट को दिखाता है

(पेज 8 से आगे)

कुछ कलंक लगता है। विश्वगुरु बनने के दावों और महान बनने के रास्ते में कोई कंकड़ भी नहीं होना चाहिए! यही वजह है कि सरकार इस डॉक्युमेण्ट्री पर हर जगह रोक लगा रही है, जबकि खुले तौर पर दंगाई मानसिकता पैदा करने वाली 'कश्मीर फ़ाइल्स' जैसी झूठी फ़ासिस्ट प्रोपेगैण्डा फ़िल्म को सरकार द्वारा खुलकर प्रचारित-प्रसारित किया जा रहा है! मज़दूर वर्ग और मेहनतकश आबादी को इस प्रकार की फ़ासीवादी नीति और चालों का खुलकर विरोध करना चाहिए। वैसे भी इस तरह के प्रतिबन्ध कभी सच्चाई को छिपा नहीं पाते हैं। लोग सच्चाई को जानने का रास्ता निकाल ही लेते हैं और पूरे देश में इस डॉक्युमेण्ट्री की स्क्रीनिंग करके तमाम लोग इस प्रतिबन्ध की धज्जियाँ उड़ा भी रहे हैं। सरकार द्वारा रोकने की लाख कोशिशों के बावजूद सोशल मीडिया पर लाखों लोग इसे देख चुके हैं।

गुजरात 2002 दंगों के लिए सरकार ज़िम्मेदार नहीं, पुलिस, प्रशासन ज़िम्मेदार नहीं। किसी दंगाई ने कुछ नहीं किया सब एक-एक कर बरी हो रहे हैं। अगर किसी ने कुछ नहीं किया तो 2000 लोग तीन दिनों में मारे कैसे गये? करोड़ों की सम्पत्ति तबाह कैसे हुई? हज़ारों-हज़ार लोग जिनमें 80 प्रतिशत से अधिक मुसलमान थे, सड़कों पर कैसे आ गये, उनके परिवार तबाह कैसे हो गये? 2002 में एक भारी अन्याय हुआ और यह अभी भी जारी है क्योंकि ज़िम्मेदार लोगों को बरी किया जा रहा है। हत्यारों और बलात्कारियों का फूल मालाओं से स्वागत हो रहा है। यह आने वाले ख़तरनाक दिनों की चेतावनी है। मज़दूर-मेहनतकश वर्गों को सत्ता की इस साज़िश को समझना होगा। गुजरात में सिर्फ मुसलमान नहीं बल्कि मज़दूर-मेहनतकश और दलित-उत्पीड़ित वर्ग सभी तबाह हैं और पूँजीपति मालामाल। मज़दूर वर्ग कोई प्रतिरोध नहीं कर पा रहा है, क्योंकि उसे धर्म के नाम पर और जाति के नाम पर बाँटकर कमज़ोर कर दिया गया है। इसलिए अपने इतिहास से सीखते हुए हमें यह समझ लेना चाहिए कि मज़दूरों-मेहनतकशों की कोई धर्म, कोई जाति नहीं होती। उसकी वर्गीय एकजुटता ही उसका नारा है और यही पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ने का उसका रास्ता है।

बजट 2023-24 : मोदी सरकार की पूँजीपरस्ती का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 1 से आगे)

रखता है। 2023-24 के वित्तीय वर्ष के लिए मोदी सरकार की वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण द्वारा पेश बजट भी इस काम को बख़ूबी करता है।

यह बजट मोदी सरकार द्वारा पेश आख़िरी पूर्ण बजट है। अगले वर्ष जो बजट लोकसभा चुनावों के कुछ महीने पहले पेश होगा, वह समूचे वित्तीय वर्ष हेतु पूर्ण बजट नहीं होगा। इसलिए भी इस बजट का सर्वहारा दृष्टि से विश्लेषण एक महत्व रखता है। यह दिखलाता है कि मोदी सरकार ने पिछले 9 वर्षों में अपने अन्य सभी बजटों के समान उस वर्ग की सेवा की है, जिसके द्वारा बहाये गये हज़ारों करोड़ रुपयों के बूते वह सत्ता में पहुँची है। यह कोई भी सचेत मज़दूर जानता है कि पूँजीवादी चुनावों में अमूमन उसी की जीत होती है, जिसके पीछे पूँजीपति वर्ग की समूची आर्थिक ताक़त, मीडिया, उसके तमाम कारकून और बाहुबल खड़ा होता है। यह मुग़ालता किसी मूर्ख व्यक्ति को ही हो सकता है कि जनता तय करती है कि कौन शासन करे! सभी जानते हैं कि समूचे समाज में उसी वर्ग का बौद्धिक-सांस्कृतिक दबदबा भी क़ायम होता है, जिसका आर्थिक व राजनीतिक दबदबा होता है। इसलिए जनता की राय बनाने के तमाम उपकरणों पर जिस वर्ग का नियंत्रण होता है, वही वर्ग सामान्य परिस्थितियों में और किसी क्रान्तिकारी शक्ति के अभाव में, व्यापक जनसमुदायों की राय का निर्माण करने की ताक़त रखता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीपति वर्ग जनता की "सहमति" का निर्माण कर उससे अपने शासन हेतु "सहमति" लेता है। इसलिए सभी जानते हैं कि चुनावों में आम तौर पर जीत उसी पूँजीवादी पार्टी की होती है, जिसके पीछे बुर्जुआ वर्ग की ताक़त खड़ी होती है।

उपरोक्त मानकों और कारणों के आधार पर हमें मौजूदा बजट का भी विश्लेषण करना चाहिए और उसके अनुसार वर्ग संघर्ष या वर्ग शक्तियों के मौजूदा सन्तुलन को भी समझना चाहिए। केवल तभी हम अपनी कमज़ोरियों, अपने कार्यभारों, अपने मित्रों और अपने शत्रुओं को समझ सकते हैं।

मज़दूरों और मेहनतकश आबादी के लिए इस बजट में क्या है?

सबसे पहले तो हमें यह देखना चाहिए कि बजट में शहरी और ग्रामीण मज़दूर वर्ग, ग़रीब किसान आबादी, शहरी व ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा आबादी तथा निम्न व मध्यम मध्य वर्ग के लिए क्या है। आम तौर पर कहें, तो जनता के विभिन्न वर्गों के लिए बजट क्या कहता है।

वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने संसद में अपने बजट भाषण में दावा किया कि मौजूदा बजट विकास के फल को नौजवानों, स्त्रियों, किसानों, पिछड़ी व दलित जातियों व जनजातियों तक पहुँचायेगा। ग़ौर करिएगा, इसमें मज़दूरों का नाम कहीं नहीं लिया गया है। साथ ही, समूचे बजट भाषण में कहीं भी महँगाई की भयंकर मार की कोई चर्चा या ज़िक्र तक नहीं किया गया है। एक ऐसे समय में यह एक नंगई और अश्लीलता की इन्तहाँ है, जबकि भारत की आम मेहनतकश आबादी अभूतपूर्व महँगाई की मार झेल रही है। यह शासक वर्ग की मैनेजिंग कमेटी यानी मौजूदा मोदी सरकार की प्राथमिकताओं को भी दर्शाता है। जब हम बजट में अलग-अलग मदों व योजनाओं के लिए किये गये धन आवण्टन पर एक निगाह डालते हैं, तो यह और भी साफ़ हो जाता है कि मोदी सरकार की प्राथमिकता विशेष तौर पर बड़े पूँजीपतियों और गौण रूप में मँझोले और छोटे पूँजीपतियों की सेवा करना है।

सबसे पहले उस **'प्रधानमंत्री ग़रीब कल्याण योजना' (पीएमजीकेवाई)** की बात करते हैं, जिसके तहत 10 किलोग्राम मुफ़्त अनाज राशनकार्ड धारकों को देने का प्रावधान कोविड काल में मोदी सरकार ने किया था और जिसका प्रचार करके आख़िरी उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव किसी तरह से जीता था। **जनवरी 2023 से 10 किलोग्राम मुफ़्त अनाज मिलना बन्द हो गया है।** सबसे पहले तो यह जान लेना चाहिए कि हर योजना की तरह यह योजना भी एक पुरानी योजना थी, जिसका मोदी सरकार ने बस नाम बदल दिया था। 2013 से ही 'राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा' क़ानून के तहत सभी राशनकार्ड धारकों को रु. 3/किलो की दर से चावल और रु. 2/किलो की दर से गेहूँ दिया जा रहा था। बाद में, मोदी सरकार ने इसे मुफ़्त देने का प्रावधान किया और योजना का नाम बदलकर प्रधानमंत्री ग़रीब कल्याण योजना कर दिया। कोविड काल में मोदी सरकार ने जो भयंकर कुप्रबन्धन किया, जिसके कारण लाखों भारतीय लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी, करोड़ों लोगों को रोज़गार से हाथ धोना पड़ा और जीवन-स्तर में भयंकर गिरावट आयी, उससे पैदा होने वाली अलोकप्रियता को देखते हुए और उत्तर प्रदेश में आने वाले विधानसभा चुनावों को देखते हुए, मोदी सरकार ने घोषणा की थी कि अब 5 किलोग्राम की जगह 10 किलोग्राम मुफ़्त अनाज दिया जायेगा। इस योजना की अवधि बढ़ाकर बाद में उसे 2022 के दिसम्बर महीने तक चलाया गया क्योंकि इसी दौर में कई अन्य राज्य चुनाव भी आये। **लेकिन पूँजीपति वर्ग का यह लगातार दबाव था कि इस योजना को बन्द किया जाये क्योंकि यह व्यापक मज़दूर और मेहनतकश आबादी की ज़रूरतमन्दी को कम कर रही थी, उनकी मोलभाव की क्षमता को बढ़ा रही थी और नतीजतन मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा कर सकती थी।** चूँकि यह मोदी सरकार के मौजूदा कार्यकाल का आख़िरी पूर्ण बजट था, इसलिए मोदी सरकार ने पूँजीपति वर्ग की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए मुफ़्त अनाज की मात्रा वापस घटाकर 5 किलोग्राम कर दी। जो 5 किलोग्राम अनाज कम किया गया है, उसकी वजह से अब आम मेहनतकश आबादी को पुरानी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा योजना के समय की तुलना में भी ज़्यादा घाटा होगा। क्योंकि वह ज़रूरत का अतिरिक्त 5 किलोग्राम अनाज अब रु. 15 में नहीं, बल्कि बाज़ार में क़रीब रु. 100 में ख़रीद पायेगी। दूसरे शब्दों में, आम मेहनतकश आबादी को मोदी सरकार के इस क़दम से सीधे-सीधे बड़ा घाटा होगा और उसकी अर्थव्यवस्था और भी डाँवाडोल हो जायेगी क्योंकि उसकी कमाई का पहले से बड़ा हिस्सा अब खाद्यान्न पर ख़र्च होगा। इसका कारण मोदी सरकार ने यह बताया है कि अब कोविड की आपात स्थिति समाप्त हो गयी है और ग़रीब लोगों को अब अनाज की उतनी ज़रूरत नहीं है! यह मोदी सरकार के तमाम सफ़ेद झूठों में से नया सफ़ेद झूठ है। यदि सरकारी आँकड़ों पर ही निगाह दौड़ाएँ तो आम ग़रीब आबादी की हालत अभी भी उतनी ही ख़राब है क्योंकि उसके पास रोज़गार नहीं है और ऊपर से महँगाई भी उस समय के मुक़ाबले कुछ बढ़ी ही है। इसे कहते हैं ग़रीबी में आटा गीला होना!

हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि यह कोई "मुफ़्त" अनाज नहीं है और न ही यह मोदी सरकार का कोई अहसान है। जो मेहनतकश ग़रीब आबादी देश में सभी चीज़ों और सेवाओं का उत्पादन करती है, उसकी खाद्य सुरक्षा की गारण्टी लेना और उसे पर्याप्त और पोषणयुक्त भोजना मुहैया कराना सरकार की ज़िम्मेदारी है। इसके लिए भारी अप्रत्यक्ष करों के रूप में भी देश की जनता पहले ही आवश्यकता से ज़्यादा क़ीमत चुका चुकी है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा क़ानून के तहत फ़ण्ड को रु. 2.14 लाख करोड़ से घटाकर इस वर्ष रु. 1.37 करोड़ कर दिया गया है; इसी क़ानून के तहत ग़ैर-केन्द्रीय खाद्य प्राप्ति के लिए बजट को भी रु. 72,282 करोड़ से घटाकर रु. 59,793 करोड़ कर दिया गया है और जिसे पहले मिड-डे मील योजना के तौर पर जाना जाता था और जिसका नाम बदलकर मोदी सरकार ने **प्रधानमंत्री पोषण योजना** कर दिया था, उसके लिए भी बजट को रु. 12,800 करोड़ से घटाकर रु. 11,600 करोड़ कर दिया गया है। कुल खाद्य सब्सिडी को रु. 2.87 लाख करोड़ से रु. 1.97 लाख करोड़ कर दिया गया है।

तो सबसे बड़ा झटका जो मोदी सरकार ने मौजूदा बजट में देश की आम मेहनतकश ग़रीब जनता को दिया है वह है 'प्रधानमंत्री ग़रीब कल्याण योजना' के तहत निशुल्क मिलने वाले अनाज की मात्रा में भारी कमी, यानी उसे आधा कर दिया जाना और आम तौर पर समूची खाद्य सब्सिडी को घटा दिया जाना।

अब आते हैं दूसरे बड़े झटके पर जो कि बजट 2023-24 ने ग़रीब किसानों को दिया है। **प्रधानमंत्री किसान योजना** के तहत सभी किसान परिवारों को प्रति वर्ष रु. 6000 दिये जाते हैं। ज़ाहिर है, यह राशि ही ग़रीब किसानों के साथ एक बेहूदा मज़ाक़ है। प्रति वर्ष रु. 6000 का अर्थ है रु. 500 प्रति माह! आज की महँगाई के दौर में इसका क्या अर्थ है? लेकिन धनी किसानों और पूँजीवादी ज़मीन्दारों के शोषण के कारण पहले ही क़र्ज़ और बदहाली में दबे किसानों को मोदी सरकार की नीतियों ने इतनी दरिद्रता में पहुँचा दिया है कि उसे रु. 6000 प्रति वर्ष भी अपनी राजनीतिक चेतना की कमी के कारण "मोदी जी का उपहार" मालूम पड़ता है! **यानी, पहले इन्सान को भुखमरी की रेखा पर पहुँचा दो और फिर उसे ख़ैरात देकर एहसानमन्द महसूस कराओ! यह मोदी सरकार का पुराना रवैया है जो सभी ग़रीब मेहनतकशों के प्रति वह अपनाती रही है।** लेकिन मौजूदा बजट में अब इस राशि को देने के लिए आबण्टित फ़ण्ड को भी इतना कम कर दिया गया है कि 12 करोड़ लाभार्थी किसानों (जिसमें से क़रीब 10 करोड़ 2 हेक्टेयर से कम ज़मीन रखने वाले ग़रीब किसान हैं) को यह राशि मिल ही नहीं सकती है। यानी, एक प्रकार का धोखा या फ्रॉड ग़रीब किसानों के साथ किया गया है। पिछले वित्तीय वर्ष में यह मद था रु. 70,000 करोड़। मौजूदा बजट में इसे घटाकर रु. 60,000 कर दिया गया है।

इसी प्रकार, जिस **उज्ज्वला योजना** को लेकर मोदी सरकार ने देश में इतना भ्रम का धुआँ फैलाया था उसकी सच्चाई यह है कि आम ग़रीब मेहनतकशों के घर में यदि सिलिण्डर पहुँचा भी है तो वह ख़ाली पड़ा है और खाना लकड़ी पर पक रहा है क्योंकि सिलिण्डर भरवाने की सामर्थ्य एक दिहाड़ी मज़दूर, ठेका मज़दूर, खेतिहर मज़दूर, ग़रीब किसान या अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले कामगार में नहीं है। आगे भी इस सिलिण्डर के ख़ाली रहने की पूरी व्यवस्था मोदी सरकार ने इस बजट में कर दी है। पेट्रोलियम उत्पादों पर कुल सब्सिडी को रु. 9171 करोड़ से रु. 2257 करोड़ कर दिया गया है। ज्ञात हो कि 2020-21 में यह रु. 37,000 करोड़ रुपये थी। इस प्रकार रसोई गैस से लेकर डीज़ल और पेट्रोल के भी आगे और महँगा होने की पूरी तैयारी जनता को कर लेनी चाहिए। हम सभी जानते हैं कि पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमतों में वृद्धि का असर यह होता है कि सभी चीज़ें महँगी हो जाती हैं क्योंकि परिवहन इस पर निर्भर करता है जिसकी बढ़ी हुई लागत के कारण हर चीज़ की क़ीमत ऊपर जाती है।

अब आते हैं एक अन्य मद पर जो गाँवों के ग़रीबों को कम-से-कम एक तात्कालिक, हालाँकि बिल्कुल नाकाफ़ी राहत देता है। **महात्मा गाँधी ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना** या **मनरेगा**। इस पर सरकार ने बजट में भारी कटौती की है। पिछले वित्तीय वर्ष में इसको आबण्टित राशि थी रु. 89,400 करोड़ जिसे इस बजट में घटाकर रु. 61,000 करोड़ कर दिया गया है। मोदी सरकार की दलील है कि यह एक माँग-संचालित योजना है और चूँकि कई राज्यों में मनरेगा के तहत काम ही नहीं हुआ, इससे यह साबित हो जाता है कि इस योजना के तहत काम की गाँवों में माँग कम हो गयी है! यह वैसी ही बात है कि यह कहा जाये कि भारत के मेहनतकश लोग आज से 20 वर्ष पहले के मुक़ाबले आज कम भोजन खा रहे हैं, यानी भोजन की माँग उनमें कम हो गयी है! सच्चाई यह है कि वे कम भोजन खा पा रहे हैं क्योंकि उनकी औसत वास्तविक आय ही घट गयी है। उसी प्रकार कई राज्यों में मनरेगा के तहत काम नहीं हुआ तो इसकी वजह यह है कि उनके पास मनरेगा के तहत फ़ण्ड ही नहीं था या फिर भ्रष्टाचार और त्रुटिपूर्ण सरकारी तंत्र के कारण मनरेगा के तहत काम नहीं दिया जा सका। एक ऐसे समय में जब कि ग्रामीण बेरोज़गारी दिसम्बर 2022 में अपने चरम पर यानी 7.7 प्रतिशत पर पहुँच गयी है और महँगाई भी अपने चरम पर यानी लगभग 6.1 प्रतिशत पर पहुँच गयी है, उस समय मोदी सरकार की यह लफ़्फ़ाज़ी हलक़ के नीचे नहीं उतर सकती है कि मनरेगा के तहत काम की माँग ही कम हो गयी है। सच्चाई यह है कि अन्य कोई विकल्प न होने की स्थिति में मनरेगा के तहत काम की माँग पहले से ज़्यादा है और जिन्हें मिल भी पा रहा है, उन्हें साल में 100 दिन का काम नहीं मिल पा रहा है। **ऐसे में, मोदी सरकार द्वारा मनरेगा के बजट में इतनी भारी कटौती गाँव के ग़रीबों के पेट पर लात मारने के समान है। इसके कारण, उनमें ज़रूरतमन्दी और बेहद कम मज़दूरी पर काम करने की शर्तों को स्वीकार करने की ग़रज़ बढ़ेगी। इसका फ़ायदा गाँवों में किसको होगा? इसका फ़ायदा गाँवों में पूँजीवादी फ़ार्मरों व कुलकों यानी धनी किसानों व**

(पेज 12 पर जारी)

बजट 2023-24 : मोदी सरकार की पूँजीपरस्ती का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 11 से आगे)

पूँजीवादी भूस्वामियों को होगा जो हमेशा से ही मनरेगा के वास्तव में ख़िलाफ़ थे; इनके सामने आम ग़रीब ग्रामीण मज़दूरों व अर्द्धसर्वहारा के मोलभाव की क्षमता घट जायेगी। साथ ही, आम तौर पर समूचे पूँजीपति वर्ग को इसका फ़ायदा मिलेगा क्योंकि यह न सिर्फ़ औसत ग्रामीण मज़दूरी को और नीचे गिरायेगा बल्कि कुल औसत मज़दूरी को भी नीचे गिरायेगा। इस समय जब दुनियाभर का और हमारे देश का पूँजीपति वर्ग मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट का शिकार है और उत्पादकता में कोई नयी छलाँग लगती नहीं दिख रही है, जबकि पूँजी निवेश में आम तौर पर मशीनों व कच्चे माल पर निवेश का हिस्सा बढ़ रहा है, तो मुनाफ़े की दर नैसर्गिक तौर पर गिर रही है और उत्पादकता में किसी नये नवोन्मेष के अभाव में मुनाफ़े की गिरती औसत दर को बढ़ाने का एकमात्र रास्ता है आम तौर पर मज़दूरी के औसत स्तर को नीचे गिराना। मोदी सरकार की तमाम नीतियाँ फ़िलहाल इसी काम को अंजाम दे रही हैं, ताकि पूँजीपतियों, धन्नासेठों और अमीरज़ादों को राहत दी जा सके।

गाँव के ग़रीबों के एक अन्य हिस्से यानी ग़रीब व मँझोले किसानों पर एक और चोट करते हुए मोदी सरकार ने **खाद पर सब्सिडी** को घटाते हुए रु. 2.25 लाख करोड़ से घटाकर 1.75 लाख करोड़ कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि आने वाले साल में खाद की क़ीमतें बढ़ेंगी। जो पूँजीवादी खेती करने वाले बड़े फ़ार्मर हैं, उनकी खेती की लागत भी इससे बढ़ेगी। लेकिन उनके लिए यह उतनी बड़ी समस्या नहीं है क्योंकि यदि वे खुले बाज़ार में बेचते हैं, तो खाद की क़ीमतों में हुई बढ़ोत्तरी सीधे क़ीमतों में स्थानान्तरित हो जायेगी क्योंकि यह एक उत्पादन के साधन की लागत में हुई बढ़ोत्तरी है। हम सभी जानते हैं कि मज़दूरी में होने वाली बढ़ोत्तरी से क़ीमतों में बढ़ोत्तरी नहीं होती। ठीक यही बात एडम स्मिथ नहीं समझ पाये थे और डेविड रिकार्डो ने समझी थी और बाद में ट्रेडयूनियनवादी नेता वेस्टन ने नहीं समझी थी, जिसे मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मज़दूरी, दाम और मुनाफ़ा' में समझाया था। **यदि मज़दूरी बढ़ती है, तो नये मूल्य में, यानी वर्तमान प्रत्यक्ष मानवीय श्रम द्वारा जो नया मूल्य पैदा हुआ है, उसमें मज़दूरी और मुनाफ़े की हिस्सेदारी में मज़दूरी का हिस्सा बढ़ जाता है और मुनाफ़े की दर कम हो जाती है। लेकिन यदि उत्पादन के साधनों की क़ीमतें बढ़ने की वजह से लागत में बढ़ोत्तरी होती है तो यह बढ़ोत्तरी सीधे क़ीमत बढ़ोत्तरी में स्थानान्तरित हो जाती है।** यदि पूँजीवादी किसान सरकारी मण्डी में बेच रहा है, और उसका नेतृत्व यह दावा कर रहा है कि उसकी लागत बढ़ जायेगी और उसके मुनाफ़े में कमी आयेगी तो उसे अक्टूबर 2022 में सरकारी लाभकारी मूल्य में हुई बढ़ोत्तरी पर भी बोलना चाहिए था। अक्टूबर 2022 में गेहूँ के लिए लाभकारी मूल्य को 2022-23 के रु. 2015 प्रति क्विण्टल से बढ़ाकर रु. 2125 कर दिया गया (इसमें लागत प्रति क्विण्टल रु. 1065 है, जिसमें कि मज़दूरी, मशीन, बैल, लगान, बीज, खाद, प्राकृतिक खाद, सिंचाई लागत, उपकरणों व खेत में मौजूद निर्मित ढाँचों की घिसाई दर, डीज़ल/बिजली का ख़र्च, कार्यशील पूँजी पर ब्याज़, पारिवारिक श्रम की काल्पनिक लागत, और विविध ख़र्च शामिल हैं! यानी, 100 प्रतिशत का मुनाफ़ा!), जौ के लिए इसे रु. 1635 प्रति क्विण्टल से बढ़ाकर रु. 1735 प्रति क्विण्टल (60 प्रतिशत मुनाफ़ा), चने के लिए रु. 5230 प्रति क्विण्टल से रु. 5335 प्रति क्विण्टल (66 प्रतिशत मुनाफ़ा), मसूर के लिए रु. 5500 प्रति क्विण्टल से बढ़ाकर रु. 6000 प्रति क्विण्टल (85 प्रतिशत मुनाफ़ा), राई और सरसों के लिए रु. 5050 प्रति क्विण्टल से रु. 5450 प्रति क्विण्टल (104 प्रतिशत का मुनाफ़ा) कर दिया गया था। इसके पहले ख़रीफ़ फ़सलों में भी लाभकारी मूल्य में इसी प्रकार की बढ़ोत्तरी की गयी थी। महँगाई बढ़ने और सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली का ध्वंस करने और निशुल्क अनाज वितरण को कम करने का एक कारण यह बढ़ता हुई लाभकारी मूल्य भी रहा है और अगर सरकार ऐसा न भी करती तो सरकारी ख़रीद से बढ़ते बजट घाटे को सन्तुलित करके उसकी क़ीमत भी अप्रत्यक्ष करों को बढ़ाकर जनता से ही वसूलती।

इसलिए यदि खाद की क़ीमतें बढ़ती हैं, तो पूँजीवादी उत्पादन करने वाली पूँजीवादी फ़ार्मरों व कुलकों के मुनाफ़े की दर में कुछ कमी आ सकती है। लेकिन साधारण माल उत्पादन करने वाले छोटे किसान के लिए खाद की क़ीमतों में कोई भी विचारणीय बढ़ोत्तरी उसे क़र्ज़ के बोझ में दबा सकती है, उसे खेती से ही बाहर कर सकती है क्योंकि खेती की कुल लागत बढ़ने पर गाँव के धनी किसानों पर वह और भी निर्भर हो जायेगा क्योंकि ये ही धनी किसान उसे ऊँची ब्याज़ दर पर लूटने वाले सूदख़ोर भी हैं। इसलिए खाद की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी का सबसे भारी नुक़सान आम मेहनतकश ग़रीब किसान आबादी को उठाना पड़ेगा। आम ग़रीब किसान आबादी की यह माँग बनती है कि खाद व अन्य खेती के इनपुट पर सब्सिडी को बढ़ाने के लिए धनी किसानों व पूँजीवादी भूस्वामियों समेत समूचे पूँजीपति वर्ग पर विशेष कर लगाया जाये ताकि कम दरों पर खाद आम मेहनतकश किसान आबादी को उपलब्ध हो सके और इस सब्सिडी का बोझ अप्रत्यक्ष करों के रूप में देश की मेहनतकश जनता पर न पड़े।

मज़दूरों और मेहनतकशों के लिए जो भी कल्याणकारी या रोज़गारी-सम्बन्धी योजनाएँ चलायी जा रही हैं, उनके लिए आबण्टित बजट में भी मोदी सरकार ने कटौती की है। **श्रम व रोज़गार मंत्रालय** के फ़ण्ड को पिछले वर्ष के रु. 16,084 करोड़ से घटाकर रु. 12,434 करोड़ कर दिया गया है। इसका मक़सद भी ठीक वही है कि मज़दूरों को राज्य से मिलने वाली हर कल्याणकारी या रोज़गार सम्बन्धी राहत को ख़त्म किया जाये, ताकि पूँजीपति वर्ग के समक्ष उसकी मोलभाव की क्षमता को कम किया जा सके और औसत मज़दूरी को और भी नीचे गिराया जा सके। ठीक इसी लक्ष्य को हासिल करने के लिए मोदी सरकार ने **श्रम कल्याण मंत्रालय** को आवण्टित फ़ण्ड में भी भारी कटौती की है। इसे पिछले साल के रु. 120 करोड़ से घटाकर रु. 75 करोड़ कर दिया है। जैसा कि आप देख सकते हैं कि पहले भी मज़दूरों के कल्याण के लिए आबण्टित फ़ण्ड इतना कम था कि उसे मज़दूरों के साथ एक भद्दा मज़ाक़ ही कहा जा सकता था। अब यह भद्दा मज़ाक़ और भी अश्लील होता जा रहा है।

इसी प्रकार, 2019 में मोदी सरकार ने **प्रधानमंत्री कर्मयोगी मानधन पेंशन योजना** शुरू की थी, जिसका मक़सद यह था कि 18 वर्ष से ऊपर के अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूर (उन्हें "कर्मयोगी" नाम दिया गया है, जो ख़ुद ही स्पष्ट है : मज़दूर कर्मयोग करें और उनकी मेहनत से पैदा होने वाले फल का पूँजीपति जमकर भोग करें!) 60 वर्ष के बाद रु. 3000 की पेंशन पा सकें। इसके लिए भी इन अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों को हर महीने रु. 55 जमा कराने होंगे! बहरहाल, 60 वर्ष की उम्र के बाद जीवनपर्यन्त उन्हें रु. 3000 पेंशन देने का वायदा करने वाली इस योजना के लिए बजट में आबण्टित फ़ण्ड को पिछले वर्ष के रु. 50 करोड़ से घटाकर रु. 3 करोड़ कर दिया गया है! आश्चर्य है! इतने में तो यह योजना लागू की ही नहीं जा सकती है! यानी, यहाँ भी 'झूठ बोलो, ज़ोर-ज़ोर से झूठ बोलो, बार-बार झूठ बोलो' के अपने मंत्र को मोदी सरकार ने यहाँ फिर से दुहरा दिया है। इसी प्रकार, जिस **आत्मनिर्भर भारत रोज़गार योजना** के तहत सरकार रोज़गार सृजन के दावे कर रही थी, उसके बजट को 65 प्रतिशत घटा दिया गया है। पिछले वित्तीय वर्ष में यह रु. 6400 करोड़ था जिसे इस वर्ष घटाकर रु. 2272 करोड़ कर दिया गया है।

यानी, मज़दूरों को किसी भी प्रकार से लाभ पहुँचाने वाली योजनाओं में आबण्टित फ़ण्ड में कटौती की गयी है। साथ ही, ग़रीब किसानों व अर्द्धसर्वहारा वर्ग के कामगारों को लाभ पहुँचाने वाली हर योजना में फ़ण्ड की कटौती की गयी है। समूची मेहनतकश आबादी के लिए जारी बेहद नाकाफ़ी कल्याणकारी योजनाओं के फ़ण्ड को भी पहले से घटा दिया गया है। **कुल मिलाकर इसका मक़सद यह है कि मुनाफ़े की औसत दर के गिरने से बिलबिलाये हुए पूँजीपति वर्ग को राहत देने के लिए समूची मेहनतकश आबादी की मोलभाव की ताक़त को कम किया जाये, उन्हें ज़्यादा ज़रूरतमन्द और ग़रज़मन्द बनाया जाये और औसत मज़दूरी को और नीचे गिराया जाये।** मोदी सरकार को इलेक्टोरल बॉण्ड्स के ज़रिए अरबों-खरबों रुपये देने वाले पूँजीपतियों का क़र्ज़ तो मोदी सरकार को चुकाना ही था और वह चुका ही रही है। इन बजट नीतियों के ज़रिए वह पूँजीपति वर्ग को यह वायदा कर रही है कि मन्दी के दौर में मज़दूर वर्ग के अधिकारों को छीनने के लिए और आवाज़ उठाने पर उसे कुचलने के लिए भाजपा की फ़ासीवादी सरकार से अच्छा विकल्प उसे नहीं मिलेगा और इस बात के लिए पूँजीपति वर्ग को लुभा रही है कि 2024 के आम चुनावों के पहले भी पूँजीपति वर्ग का पूरा समर्थन भाजपा को ही मिले।

इसी बजट में मोदी सरकार ने यह भी दिखला दिया है कि वह **धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलितों, आदिवासियों और औरतों** के रूप में अतिशोषण के लिए तैयार एक बेहद अरक्षित और कमज़ोर आबादी को भी पूँजीपतियों के सामने थाली में परोस रही है। ग़ौरतलब है कि धार्मिक व जातिगत अल्पसंख्यक आबादी और स्त्रियाँ पूँजीपतियों द्वारा अतिशोषण के लिए एकदम उपयुक्त होते हैं क्योंकि अपने सामाजिक उत्पीड़न व दमन के कारण उनकी सामाजिक स्थिति कमज़ोर होती है और उनका बेहद कम मज़दूरी द्वारा अतिशोषण भी आसान हो जाता है और प्रतिरोध की गुंजाइश भी कम रहती है। मोदी सरकार ने दलितों, आदिवासियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों और स्त्रियों के हितैषी होने के जितने दावे किये हैं, उनकी सच्चाई इन सामाजिक समुदायों के लिए बजट में आबण्टित राशि से सामने आ जाती है।

सबसे पहले धार्मिक अल्पसंख्यकों के कल्याण हेतु आबण्टित मद पर आते हैं। **अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय** हेतु आबण्टित राशि को पिछले वर्ष के रु. 5020.5 करोड़ से लगभग 40 प्रतिशत कम करके रु. 3097.6 करोड़ पर ला दिया गया है। विशेषकर, मुसलमानों के प्रति भाजपा और मोदी सरकार का रवैया किसी से छिपा नहीं है। किसी भी तरह से उनके ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाना और उन्हें देश की समस्याओं के लिए ज़िम्मेदार ठहराने का झूठ प्रसारित करना और उन्हें व्यापक जनता को आपस में बाँटकर समूची जनता की शक्ति को ही कमज़ोर कर देना, संघ परिवार की पुरानी नीति रही है, ठीक वैसी ही नीति जो जर्मनी में हिटलर ने यहूदियों के विरुद्ध अपनायी थी और फिर जर्मन मज़दूर वर्ग का एक हिस्सा भी इसमें बह गया था, जिसका नतीजा यह हुआ था कि वह भी हिटलर के फ़ासीवादी उभार के सामने पराजित हुआ क्योंकि वह नस्ल के आधार पर बँट गया। भारत के मज़दूरों-मेहनतकशों को मोदी सरकार और संघ परिवार धर्म के उन्माद में बहाकर बाँटना चाहते हैं और एक नक़ली दुश्मन के तौर पर अल्पसंख्यकों को खड़ा करके पूँजीवाद और फ़ासीवाद के सारे विनाशकारी नतीजों के लिए उन्हें ज़िम्मेदार ठहराना चाहते हैं। उनकी यह सोच धार्मिक अल्पसंख्यकों के कल्याण हेतु जारी कार्यक्रमों के फ़ण्ड में भारी बजट कटौती में सामने भी आ गयी है।

इसी प्रकार, **सामाजिक न्याय व सशक्तीकरण मंत्रालय** के फ़ण्ड में मात्र 7.75 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है, जबकि पिछले वर्ष से औसत महँगाई दर 8.4 प्रतिशत थी। यानी वास्तव में इस मंत्रालय को दिये गये फ़ण्ड को वास्तविक मूल्य के अर्थों में देखें तो कम किया गया है। उसी प्रकार, **विकलांग लोगों के सशक्तीकरण के लिए बने मंत्रालय** के फ़ण्ड में भी मात्र 1.05 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है, जो वास्तव में दिये गये फ़ण्ड में एक वास्तविक कटौती है। **महिला एवं बाल विकास मंत्रालय** को दिये गये फ़ण्ड में मात्र 1.1 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है, जिसे महँगाई दर से प्रतिसन्तुलित किया जाये, तो वास्तव में यह जारी फ़ण्ड में की गयी कमी है। इससे मोदी सरकार का यह इरादा भी ज़ाहिर हो जाता है कि आँगनबाड़ी, आशा जैसी स्कीमों में काम करने वाली स्कीम वर्करों को मज़दूर मानने और उन्हें उनके श्रम अधिकार, वेतन आदि देने की कोई योजना मोदी सरकार ने नहीं बनायी है; उल्टे उनके फ़ण्ड में कटौती कर इन योजनाओं को ही क्रमिक प्रक्रिया में कमज़ोर बनाने और इसमें काम करने वाली स्कीम वर्करों के रहे-सहे हक़ों पर भी डाका डालने की मंशा मोदी सरकार ने ज़ाहिर कर दी है।

अगर ऊपर से देखें तो यह लग सकता है कि आदिवासी आबादी के लिए **जनजातीय मामलों के मंत्रालय** के फ़ण्ड में रु. 8451.92 करोड़ में बढ़ोत्तरी कर उसे 12,461.88 करोड़ कर दिया गया है। लेकिन सच्चाई यह है कि इसका बड़ा हिस्सा एकलव्य मॉडल रिहायशी स्कूल की योजना में रु. 2000 करोड़ से रु. 6000 करोड़ की बढ़ोत्तरी के कारण है। अन्य

(पेज 13 पर जारी)

बजट 2023-24 : मोदी सरकार की पूँजीपरस्ती का बेशर्म दस्तावेज़

(पेज 12 से आगे)

सभी योजनाओं में या तो कोई विशेष बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है, या फिर कुछ कटौती की गयी है।

स्त्रियों के लिए बजट में कुल आबण्टित राशि में मामूली बढ़ोत्तरी की गयी है। आर्थिक सर्वेक्षण के संशोधित आकलन के अनुसार, बजट में रु. 2.18 लाख करोड़ आबण्टित होने का अनुमान था, जबकि रु. 2.23 लाख करोड़ आबण्टित किये गये हैं। यह कुल बजट का 4.96 प्रतिशत है, जबकि पिछले वित्तीय वर्ष में इस मद में हुआ ख़र्च कुल बजट का 5.52 प्रतिशत था। यानी बजट में हुई बढ़ोत्तरी और मुद्रास्फीति से तुलना करें, तो स्त्रियों के लिए जारी स्कीमों में अन्तर्गत ख़र्च पहले से घटा है, हालाँकि रुपयों की मात्रा के रूप में यह बढ़ा हुआ दिख सकता है।

समूची जनता के लिए महत्वपूर्ण **सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था** पर निर्धारित ख़र्च भी मोदी सरकार की प्राथमिकताओं को दिखला देता है। वैसे ऊपर से देखें तो स्वास्थ्य के लिए आबण्टित बजट ख़र्च पिछले वित्तीय वर्ष के मुक़ाबले रु. 38,038 से बढ़ाकर रु. 41,789 करोड़ किया गया है। यानी, लगभग 9 प्रतिशत की नॉमिनल बढ़ोत्तरी। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि इस बजट को बढ़ाकर ऐसे दिखाया गया है कि मोदी सरकार ने जल और सफ़ाई के बजट को भी अब स्वास्थ्य बजट में जोड़ दिया है। ऐसे में ज़ाहिरा तौर पर बढ़ोत्तरी नज़र आयेगी लेकिन वास्तव में उसमें कमी की गयी है। लेकिन अगर नक़ली बढ़ोत्तरी को भी देखें और इसे पिछले वर्ष से इस वर्ष तक की औसत मुद्रास्फीति दर से प्रतिसन्तुलित करें तो इसमें लगभग शून्य बढ़ोत्तरी की गयी है। वह भी तब जबकि कोविड काल ने दिखला दिया था कि हमारे देश की स्वास्थ्य व्यवस्था कितनी लचर है और उसमें कितने सुधार की आवश्यकता है। लेकिन जो सरकार व्यवस्थित तौर पर निजीकरण में भरोसा करती है, ज़ाहिरा तौर पर वह सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था को जानबूझकर लचर अवस्था में रखेगी, उसे और भी ख़राब बनायेगी, ताकि प्राइवेट सेक्टर को फ़ायदा हो और निजी अस्पताल और नर्सिंग होम फलें-फूलें। वास्तव में, स्वास्थ्य क्षेत्र में निजीकरण को बढ़ावा देने वाली आयुष्मान भारत योजना में ही असली फ़ण्ड बढ़ोत्तरी हुई है, रु. 6427 करोड़ से रु. 7200 करोड़। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन में पिछले वर्ष के मुक़ाबले रु. 37,159 करोड़ के मुक़ाबले कमी करके रु. 36,785 करोड़ ही दिया गया है।

इसी प्रकार **शिक्षा पर ख़र्च** में भी नॉमिनल बढ़ोत्तरी को छोड़ दें तो वास्तविक अर्थों में मोदी सरकार ने कटौती की है। लक्ष्य है शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण की प्रक्रिया को और ज़्यादा रफ़्तार देना। शिक्षा के लिए पिछले साल के रु. 1.04 लाख करोड़ रुपये की तुलना में इस बार रु. 1.12 लाख करोड़ रुपया निर्धारित किया गया है। अगर इसे मुद्रास्फीति से प्रतिसन्तुलित कर दें तो यह वास्तव में शिक्षा के बजट में कमी है। कुल बजट का मात्र 0.37 प्रतिशत शिक्षा के लिए आबण्टित किया गया है। मोदी सरकार से पहले के दौर में यह कुल बजट का क़रीब 0.65 प्रतिशत के आस-पास हुआ करता था। लेकिन मोदी सरकार इसे सबसे नीचे लाने वाली सरकार साबित हुई है।

प्रधानमंत्री आवास योजना में रु. 48,000 करोड़ से रु. 79,590 करोड़ की अच्छी-ख़ासी बढ़ोत्तरी की गयी है। लेकिन यहाँ भी हम मज़दूरों-मेहनतकशों को दो बातें समझ लेनी चाहिए। पहली बात, पहले की सरकारी आवास योजनाओं में सरकार मकान बनाकर देती थी। इस योजना में निजी पूँजीपति यानी बिल्डर मकान बनायेंगे और सरकार इस फ़ण्ड से उनको सब्सिडी देगी। लेकिन सरकार सब्सिडी कहाँ से दे रही है? वह आपसे और हमसे लेने वाले अप्रत्यक्ष करों के ज़रिए यह सब्सिडी देगी। यानी, इस योजना में वास्तव में जनता के नाम पर निजी बिल्डरों को फ़ायदा पहुँचाया जाना है। इसीलिए इसमें इतनी फ़ण्ड बढ़ोत्तरी की भी गयी है। दूसरी बात यह है कि मोदी सरकार आँकड़ों को छिपाकर झूठे दावे करने में कुशल है। अभी तक यह नहीं बताया गया है कि पिछले वित्तीय वर्ष में इस योजना के तहत वास्तव में कितने ग़रीबों को घर हासिल हुए हैं। इसलिए वास्तव में क्या हुआ है, यह किसी को नहीं मालूम। बस घोषणाएँ हैं, कुछ राशियाँ हैं, ठोस तौर पर कुछ भी नहीं है।

अब आते हैं इस पर कि यह बजट पूँजीपति वर्ग को क्या देता है।

पूँजीपति वर्ग के लिए बजट की सौग़ात

वैसे तो ऊपर जिन-जिन बजट आबण्टनों के ज़रिए व्यापक मेहनतकश जनता को पूँजीपति वर्ग के समक्ष अरक्षित, कमज़ोर, ज़रूरतमन्द और ग़रज़मन्द बनाया गया है, वे सभी नीतियाँ सीधे-सीधे पूँजीपतियों को ही लाभ पहुँचाती हैं, लेकिन बजट ने कुछ विशिष्ट आबण्टन भी किये हैं जो कि अलग-अलग मात्रा में समूचे पूँजीपति वर्ग को फ़ायदा पहुँचाते हैं।

सबसे पहले छोटे और मँझोले पूँजीपति वर्ग की बात करते हैं, जिसको मिलने वाला फ़ायदा बड़े पूँजीपति वर्ग के मुक़ाबले बेशक कुछ कम हो सकता है, लेकिन वह निश्चित तौर पर भारी फ़ायदा है। सरकार ने **सूक्ष्म, छोटे व मँझोले उपक्रमों** के लिए पिछले वित्तीय वर्ष में रु. 5455 करोड़ आबण्टित किया था, इस वर्ष के संशोधित आकलन के अनुसार उसे रु. 15,700 करोड़ आबण्टित किये जाने थे, लेकिन बजट ने वास्तव में उसे रु. 21,422 करोड़ आबण्टित किये हैं। इसके अलावा, ऋण लेने को इन छोटे व मँझोले पूँजीपतियों के लिए आसान बना दिया गया है, कई प्रकार के लाइसेंस व अनुमतियाँ लेने से उन्हें और समूचे पूँजीपति वर्ग को ही छूट दे दी गयी है। **मिसाल के तौर पर, 39,000 अनुपालनों को समाप्त कर दिया गया है और 3400 क़ानूनी अपराधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया गया है।** इन दोनों का फ़ायदा निश्चित तौर पर बड़े पूँजीपति वर्ग को भी मिलेगा, लेकिन मुनाफ़े का मार्जिन ज़्यादा होने और उत्पादकता ज़्यादा होने से ज़्यादा प्रतिस्पर्द्धी होने के कारण बड़े पूँजीपति वर्ग को इन तमाम अनुपालनों और नियमों को तोड़ने की चिन्दीचोरी उस हद तक नहीं करनी पड़ती जितनी कि छोटे पूँजीपतियों को करनी पड़ती है। इसलिए इसका भी सबसे बड़ा फ़ायदा छोटे और मँझोले पूँजीपतियों को मिलेगा। चुनावों के ठीक पहले मोदी सरकार इस वर्ग को नाराज़ नहीं कर सकती है और इसीलिए बड़ी पूँजी की ज़्यादा निष्ठा से सेवा करने के बावजूद उसे छोटे व मँझोले पूँजीपति वर्ग का भी ध्यान रखना है और उसे रखा भी गया है।

बड़े कारपोरेट घरानों यानी **बड़े पूँजीपति वर्ग** ने पहले ही अपनी दो प्राथमिकताओं को मोदी सरकार से साझा कर दिया था : पहला था बड़े पैमाने पर **अवरचनागत परियोजनाओं** में निवेश करना जो दो तरह से पूँजीपति वर्ग को फ़ायदा पहुँचाता है। पहला, निजीकरण के ज़रिए ये निवेश बड़े पूँजीपतियों के मुनाफ़ा पीटने के अवसर मुहैया कराता है; दूसरा, समूचा बजट आबण्टन जो कि अवरचना निर्माण पर किया जाना है, उसका **नोडल अवरचना** के क्षेत्र में होना है, यानी एक्सप्रेस-वे, एयरपोर्ट, बन्दरगाह आदि का निर्माण, न कि आम जनता के लिए ज़रूरी इन्फ्रास्ट्रक्चर में, यानी आर्टिरियल सड़कें, गाँवों और शहरों के ग़रीब इलाक़ों में अवरचना निर्माण आदि। निश्चित तौर पर, इस प्रकार का निवेश रोज़गार भी पैदा करता है। लेकिन इसमें रोज़गार सृजन की दर लगातार घटती रही है क्योंकि ठेकाकरण और अनौपचारिकीकरण तथा मशीनीकरण ने प्रति इकाई रोज़गार इस क्षेत्र में कम किया है। इसमें होने वाला निवेश मूलतः पूँजीपति वर्ग को ही फ़ायदा पहुँचाने वाला है। पिछले वर्ष के रु. 7.28 लाख करोड़ के मुक़ाबले इस वित्तीय वर्ष में मोदी सरकार ने इस पर रु. 10 लाख करोड़ का पूँजी निवेश करने की योजना बनायी है। **ज़ाहिर है, यह ख़र्च होने की प्रक्रिया में भी पूँजीपतियों को लाभ पहुँचायेगा और ख़र्च होने के बाद भी।**

एक तीसरा कारण भी है जिसके चलते बड़ा पूँजीपति वर्ग अवरचना के विकास में दिलचस्पी ले रहा है और मोदी सरकार ने इसमें निवेश बढ़ाकर उसकी दिलचस्पी का सकारात्मक रूप से जवाब भी दिया है। यह कारण यह है कि **राष्ट्रीय मॉनीटाइज़ेशन पाइपलाइन** की योजना के तहत मोदी सरकार अधिकांश एयरपोर्ट, बन्दरगाह, राजमार्ग आदि जैसी अवरचनाएँ निजी पूँजीपतियों को लम्बी लीज़ पर सौंपने वाली है। इसलिए पहले जनता के धन से इन अवरचनागत निर्माण कार्यों को पूरा किया जायेगा, उनके ठेके भी पूँजीपतियों को दिये जायेंगे, उनमें मज़दूरों को पूरी तरह से निचोड़ने के लिए श्रम क़ानूनों से भी पूरी छूट दी जायेगी और जब ये बन जायेंगे तो इन्हें लम्बी लीज़ के नाम पर मुनाफ़ाख़ोरी के लिए पूँजीपतियों को सौंप दिया जायेगा। इसीलिए जनता के लिए तात्कालिक तौर पर सबसे ज़रूरी अवरचना का निर्माण करने पर मोदी सरकार का कोई ज़ोर नहीं है।

अब मोदी सरकार द्वारा बजट में पूँजीपतियों विशेष तौर पर **वित्तीय पूँजीपति वर्ग** को फ़ायदा पहुँचाने वाले एक क़दम पर आते हैं। महिलाओं के कल्याण के लिए निर्मला सीतारमण ने स्त्रियों के आत्मसहायता समूहों पर काफ़ी बात की। उन्होंने कहा यह सामूहिक-उद्योग होंगे। लेकिन इसके पीछे वास्तव में क्या मंशा है? इन समूहों को सूक्ष्म ऋण योजनाओं के तहत बेहद ऊँची ब्याज़ दरों पर ऋण दिये जायेंगे। भयंकर ग़रीबी और बेरोज़गारी के कारण कोई विकल्प न होने की सूरत में तमाम महिलाएँ इस प्रकार की योजना के तहत अपना अतिशोषण करवाने को तैयार भी मिल जाती हैं। वास्तव में, रोज़गार-विहीन विकास के मॉडल ने मज़दूरों-मेहनतकशों की एक अच्छी-ख़ासी आबादी से "शोषित होने का अधिकार" भी छीन लिया है और उसे स्वरोज़गार के नाम पर अनौपचारिक क्षेत्र में "आत्मनिर्भर" उद्यमी बनने को मजबूर कर दिया है, जो हमेशा भूख, कुपोषण और बीमारी में रहता है और अक्सर अकाल मृत्यु का शिकार हो जाता है। ऐसे में, वित्तीय पूँजी के हाथों लुटने के वास्ते ऐसे आत्मसहायता समूह बनाने के लिए भी हर क्षेत्र में भारी संख्या में महिलाएँ मिल जाती हैं और पूँजीपतियों को लूट का एक और अवसर मुहैया होता है। यही कारण है कि इस बजट में इस पर मोदी सरकार ने काफ़ी ज़ोर दिया है।

अब बजट भाषण में मोदी सरकार की वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण के कुछ खोखले दावों पर आते हैं।

वित्त मंत्री सीतारमण ने दावा किया कि वैश्विक मन्दी के बावजूद उम्मीद है कि भारत की अर्थव्यवस्था 7 प्रतिशत की दर से बढ़ेगी जो कि तमाम उभरती अर्थव्यवस्थाओं में सबसे ज़्यादा होगा। उनका दावा था कि पिछले नौ वर्षों में, यानी मोदी सरकार के कार्यकाल में औसत प्रति व्यक्ति आय दोगुनी हो गयी है और अब रु. 1.97 लाख प्रति वर्ष यानी रु. 16,416 प्रति माह हो गयी है। **वैसे तो यह स्वयं बेहद कम है, लेकिन इसमें सीतारमण ने यह नहीं बताया कि रुपयों में अभिव्यक्त इस बढ़ोत्तरी को अगर पिछले नौ साल में बढ़ी महँगाई से प्रतिसन्तुलित किया जाये, तो वास्तविक आय बढ़ोत्तरी कितनी होगी?** शायद कुछ भी नहीं या फिर नाममात्र की। प्रति व्यक्ति आय कुल उत्पादन के नॉमिनल मूल्य को जनसंख्या से भाग देकर निकाला जाता है। लेकिन यदि देश में तरक़्क़ी का सही आकलन करना है, तो भौतिक रूप में उत्पादन की बढ़ोत्तरी को जनसंख्या से भाग दिया जाना चाहिए, या अगर उसे रुपये में ही निकालना है, तो मुद्रास्फीति के साथ उसे प्रतिसन्तुलित करके ही निकाला जा सता है। अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं है। सच्चाई यह है कि 2022-23 के लिए केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन का जो आख़िरी आँकड़ा है उसके अनुसार पिछले तीन वर्षों में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में केवल 2 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है।

दूसरी बात यह है कि प्रति व्यक्ति आय अपने आप में कुछ भी नहीं बताती। यह भी देखना होगा कि देश में कुल आय में अमीरों का हिस्सा कितना है और ग़रीबों का हिस्सा कितना है। तभी पता चल सकता है कि विकास की सारी मलाई कहीं अमीरज़ादे तो नहीं चाट रहे हैं? अगर आँकड़ों को देखें तो यही बात साबित होती है। मोदी सरकार के आने के ठीक पहले, यानी 2012-13 में देश की 30.7 प्रतिशत सम्पदा पर ऊपर के 1 प्रतिशत सबसे अमीर लोगों का क़ब्ज़ा था, देश की 62.8 प्रतिशत सम्पदा पर देश के 10 प्रतिशत सबसे अमीर लोगों का क़ब्ज़ा था, बीच के 40 प्रतिशत लोगों का 30.8 प्रतिशत हिस्से पर क़ब्ज़ा था, जबकि सबसे ग़रीब नीचे के 50 प्रतिशत लोगों का मात्र 6.4 प्रतिशत पर अधिकार था। मोदी सरकार के लगभग 9 साल बीतते-बीतते 2023 में क्या हालत हो गयी है? आज देश के ऊपर के 1 प्रतिशत सबसे अमीर लोगों का देश की सम्पदा के 40.6 प्रतिशत पर क़ब्ज़ा है, 10 प्रतिशत सबसे अमीर लोगों का 72 प्रतिशत पर क़ब्ज़ा है, बीच के 40 प्रतिशत का 25 प्रतिशत पर क़ब्ज़ा है, जबकि नीचे के सबसे ग़रीब 50 प्रतिशत लोगों का 3 प्रतिशत पर क़ब्ज़ा है! **यानी देश में पैदा हो रही**

(पेज 14 पर जारी)

बजट 2023-24 : मोदी सरकार की पूँजीपरस्ती का बेशर्म दस्तावेज़

कुल सम्पदा (जो कि वे ही अपनी मेहनत से पैदा करते हैं) में आम मेहनतकश ग़रीब आबादी यानी मज़दूर, ग़रीब किसान, अर्द्धसर्वहारा वर्ग, निम्न मध्यवर्ग का हिस्सा लगातार घटता गया है, जबकि सबसे अमीर पूँजीपति वर्ग, धनी फ़ार्मरों, पूँजीवादी ज़मीन्दारों और उच्च मध्यवर्ग का हिस्सा लगातार बढ़ता गया है। इसलिए अपने आप में प्रति व्यक्ति आय बढ़ने का हम मेहनतकशों के लिए कोई मतलब नहीं है क्योंकि पूँजीवाद समूची सम्पदा को तो बढ़ाता ही रहता है। सवाल है कि इस सम्पदा का वितरण किस रूप में हो रहा है और यह भी पूँजी संचय का आम नियम होता है कि कुल सम्पदा में पूँजीपति वर्ग तथा उसके पिछलग्गू वर्गों का हिस्सा बढ़ता जाता है जबकि आम मेहनतकश आबादी का हिस्सा घटता जाता है। **अगर हम केवल मज़दूर आबादी की बात करें जो कि संगठित क्षेत्र में काम करती है तो आज संगठित क्षेत्र में पैदा होने वाले हर रु. 10 में से मज़दूर वर्ग को केवल 23 पैसे मिलते हैं।** मुनाफ़े और मज़दूरी का यह अनुपात बताता है कि मज़दूर वर्ग सापेक्ष तौर पर भी और नवउदारवाद के पूरे दौर में निरपेक्ष तौर पर भी दरिद्र होता गया है क्योंकि इस दौर की नीतियाँ ही औसत मज़दूरी को गिराने की ओर लक्षित हैं ताकि मुनाफ़े की गिरती औसत दर के संकट से पूँजीवाद को निजात दिलायी जा सके।

सीतारमण ने यह भी दावा किया कि सकल घरेलू उत्पाद 15.4 प्रतिशत बढ़ा है। लेकिन यह भी मुद्रास्फीति के बिना आकलित दर है। मुद्रास्फीति के साथ वास्तविक तौर पर देखें तो यह वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत के क़रीब है। लेकिन बजट ख़र्च में वास्तविक बढ़ोत्तरी मात्र 1.5 प्रतिशत के क़रीब बैठती है। यानी वास्तव में बजट ख़र्च सकल घरेलू उत्पाद में हुई बढ़ोत्तरी की तुलना में कम हुआ है। यह कमी ठीक इसीलिए आयी है क्योंकि आम मेहनतकश आबादी के कल्याण के लिए चलायी जाने वाली सरकारी योजनाओं हेतु फ़ण्ड में भारी कटौती की गयी है। इसी प्रकार सीतारमण ने यह भी दावा किया कि अगले वर्ष महँगाई दर मात्र 4 प्रतिशत रहेगी और सकल घरेलू उत्पाद में नॉमिनल अर्थों में (वास्तविक अर्थों में नहीं) 10.5 प्रतिशत की दर से बढ़ोत्तरी होगी! लेकिन इसी सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण ने सकल घरेलू उत्पाद दर का आकलन 6.5 प्रतिशत पर रहने का किया है!

खाते-पीते मध्यवर्ग को पूँजीपति वर्ग का पिछलग्गू बनाने के लिए मोदी सरकार का तोहफ़ा

खाता-पीता मध्यवर्ग काफ़ी ख़ुश है। **वजह यह है कि मोदी सरकार ने प्रत्यक्ष करों में कमी की है और पूँजीपति वर्ग और साथ ही उसके पिछलग्गू खाते-पीते मध्यवर्ग को लाभ पहुँचाया है।** पहले आयकर के छह स्लैब्स थे जिन्हें घटाकर अब पाँच स्लैब कर दिया गया है। साथ ही, न्यूनतम कर योग्य आय को रु. 2.5 लाख से बढ़ाकर रु. 3 लाख कर दिया गया है। अब रु. 3 लाख प्रति वर्ष की आय तक कोई कर नहीं लगेगा, 3 से 6 लाख की आय वाले को 5 प्रतिशत आयकर देना होगा, 6 से 9 लाख प्रति वर्ष वाले को 10 प्रतिशत, 9 से 12 लाख प्रति वर्ष वाले को 15 प्रतिशत, 12 से 15 लाख प्रतिशत वर्ष वाले को 20 प्रतिशत और 15 लाख प्रति वर्ष से अधिक वालों को 30 प्रतिशत आयकर देना होगा। नयी आयकर व्यवस्था में आयकर में छूट की सीमा को रु. 5 लाख प्रति वर्ष वालों से बढ़ाकर रु. 7 लाख प्रति वर्ष तक कर दिया गया है, जिसे अपनाने वाले खाते-पीते मध्यवर्ग को साल में क़रीब रु. 34000 रुपये का फ़ायदा होगा। लेकिन मध्य मध्य वर्ग को मिलने वाला यह फ़ायदा उस फ़ायदे के मुक़ाबले मामूली है जो कि उच्च वर्ग और उच्च मध्य वर्ग को मिलेगा। मिसाल के तौर पर, रु. 2 करोड़ रुपये की आय वाले को अब 37 प्रतिशत की बजाय 25 प्रतिशत आयकर देना होगा। मिसाल के तौर पर, यदि किसी की वार्षिक आय रु. 5.5 करोड़ है, तो उसे हर साल रु. 20 लाख का फ़ायदा होगा। यानी अमीरों को और ज़्यादा अमीर बनाने की पूरी तैयारी है। अधिकतम आयकर दर को 42.7 प्रतिशत से घटाकर 37 से 25 प्रतिशत तक ला दिया गया है। **यानी, करों से मुक्ति सबसे ज़्यादा सबसे अमीर लोगों को दी गयी है, यानी पूँजीपति, बड़े व्यापारी, ऊँची तनख़्वाहें उठाने वाले पेशेवर आदि।** मध्य मध्य वर्ग को भी कुछ हज़ार का फ़ायदा दिया गया है, ताकि आगे फिर से वह 2024 के चुनावों में मोदी के लिए ताली-थाली बजाये, हालाँकि उसे असली लाभ कुछ भी नहीं मिला है। वजह यह कि तीन वर्ष पहले जिसकी वार्षिक आय रु. 5 लाख प्रति वर्ष थी, वह अब सरकारी नौकरियों व संगठित क्षेत्र की नौकरियों में भत्तों में हुई बढ़ोत्तरी के साथ वैसे ही 6.5 से 7 लाख प्रति वर्ष तक पहुँच रही थी। उसे वास्तव में वही मिल रहा है जो उसे तीन साल पहले मिल रहा था। लेकिन आँकड़ों की बाज़ीगरी से मूर्ख बनने के लिए मध्यवर्ग हमेशा तैयार बैठा रहता है।

अमीरज़ादों के लिए इन टैक्स-कटौतियों के कारण सरकार को भारी घाटा होने वाला है और वह वैसे भी ग़रीबों की बात आते ही पैसे की कमी का रोना रोने लगती है। तो फिर इन अमीरों को इतनी छूटें क्यों दी गयीं? अगर कहीं कर कम करने थे, तो रसोई गैस, पेट्रोल, डीज़ल समेत तमाम वस्तुओं और सेवाओं पर लगने वाले अप्रत्यक्ष करों को कम किया जाना चाहिए था, जिससे कि मेहनतकश जनता को राहत मिलती, महँगाई कम होती। लेकिन मोदी सरकार भला ऐसा क्यों करने लगी?

निष्कर्ष

जैसा कि हम देख सकते हैं, इस साल के बजट का एक संक्षिप्त विश्लेषण या उस पर एक सरसरी निगाह ही इस बात को दिखला देती है कि मोदी सरकार की प्राथमिकताएँ एक पूँजीवादी सरकार और विशेष तौर पर नवउदारवाद के दौर की फ़ासीवादी सरकार के तौर पर क्या हैं। **नवउदारवाद के पूरे दौर में और विशेष तौर पर मोदी सरकार के दौर में भारत के पूँजीवादी विकास की पूरी कहानी वास्तव में मज़दूर वर्ग और व्यापक मेहनतकश आबादी की औसत मज़दूरी को कम करने पर आधारित है।**

इसका लाभ समूचे पूँजीपति वर्ग को अलग-अलग मात्रा में मिलता है, चाहे वह बड़ा इजारेदार व ग़ैर-इजारेदार वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग हो, मँझोला व छोटा औद्योगिक पूँजीपति वर्ग हो, बड़े व मँझोले व्यापारी हों, ठेकेदारों-जॉबरों और बिचौलियों का पूरा वर्ग हो, धनी पूँजीवादी किसान व पूँजीवादी ज़मीन्दार हों, या फिर पूँजीपति वर्ग के अहलकार की भूमिका निभाने वाला उच्च मध्यवर्ग हो।

इसमें नुक़सान उठाने वाले वर्ग हैं शहरी और ग्रामीण मज़दूर वर्ग, शहरी और ग्रामीण अर्द्धसर्वहारा वर्ग, ग़रीब किसान वर्ग, निम्न मध्यवर्ग, अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाली तथाकथित "स्वरोज़गार-प्राप्त" आबादी। ये वे वर्ग हैं जिनको अपनी वास्तविक वर्गीय माँगों को समझना होगा और एकजुट होकर मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ और मौजूदा फ़ासीवादी मोदी सरकार के ख़िलाफ़ लड़ना होगा।

इसमें शहरी सर्वहारा वर्ग और विशेष तौर पर शहरी औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण और नेतृत्वकारी होगी। इसलिए इस वर्ग को अपने आपको एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर संगठित करना होगा। केवल वही व्यापक जनसमुदायों में पूँजीपति वर्ग की पूँजीवादी विचारधारा और राजनीति के वर्चस्व को तोड़कर उसे पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध और नयी समाजवादी क्रान्ति के लिए संगठित कर सकता है।

आज हममें इस राजनीतिक चेतना की कमी है। इसलिए पूँजीपति वर्ग और उसके भोंपू हमें हमारे ही वर्ग हितों के विपरीत अपने दुश्मनों का समर्थन करने और उनके ख़ेमे में ले जाने का काम करते हैं। इसलिए हमें अपने वास्तविक वर्ग हितों को समझना होगा, अपने मित्रों और अपने शत्रुओं को पहचानना होगा और मौजूदा बजट का विश्लेषण करने के पीछे भी हमारी असली मक़सद यही है कि इस काम में वर्ग सचेत मज़दूर साथियों की सहायता की जाये।

माल से मुद्रा तक

(पेज 16 से आगे)

यानी, सार्वभौमिक समतुल्य का रूप, जिससे तमाम उत्पादक अपने मालों का विनिमय करने को तैयार होते हैं। इसी को मार्क्स ख़ूबसूरत साहित्यिक शब्दावली में कहते हैं कि मानो सभी मालों ने साथ आकर निर्णय किया कि कोई एक विशिष्ट माल मूल्य का रूप है, सार्वभौमिक समतुल्य है और सभी उसमें अपने मूल्य को अभिव्यक्त करेंगे और वही उनके लिए मूल्य की माप होगा।

इस सामान्य रूप के पैदा होने के बाद मुद्रा-रूप (Money-Form) का पैदा होना भी छोटा लेकिन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क़दम था। माल उत्पादकों और आम तौर पर लोगों ने ऐतिहासिक अनुभवों के आधार पर यह सीखा कि सार्वभौमिक समतुल्य की भूमिका निभाने के लिए किसी माल में दो गुण होना आवश्यक है : पहला, वह नाशवान नहीं होना चाहिए और दूसरा, वह हर जगह समान रूप और गुणवत्ता में पाया जाना चाहिए। मिसाल के तौर पर, गाय या बकरी या अनाज नाशवान हैं। कोई भी उत्पादक इस सार्वभौमिक समतुल्य के रूप में अपने पास मूल्य या समृद्धि का दीर्घकालिक संचय नहीं कर सकता है और उसके बने रहने की कोई गारण्टी भी नहीं होती है, क्योंकि वे टिकाऊ नहीं होते और नाशवान होते हैं। मिसाल के तौर पर, कोई अपने माल का विनिमय गाय या बकरी से करे और बाज़ार से वापस आते समय उसकी गाय या बकरी किसी बीमारी के कारण मर जाये या भाग जाये, तो वह माल उत्पादक बर्बाद हो जायेगा या उसे घाटा होगा! उसी प्रकार, गायों की भी कई प्रजातियाँ होती हैं, जैसे कि तम्बाकू की भी कई प्रजातियाँ होती हैं। कुछ गायें नस्ली तौर पर ज़्यादा दूध देती हैं और बेहतर दूध देती हैं और कम श्रम लगाकर उनका उत्पादन किया जा सकता है और उनसे दुग्ध उत्पादन किया जा सकता है। ऐसे में, दो गायों या दो प्रकार के तम्बाकुओं की गुणवत्ता और उनके उत्पादन में लगने वाले श्रम की मात्रा भी अलग-अलग होगी। इसलिए दुनिया की अलग-अलग सभ्यताओं में शुरुआती दौर में कई अलग-अलग धातुओं के सिक्के ढालने की शुरुआत हुई जो कि मुद्रा की भूमिका निभाने लगे। चूँकि इन सभ्यताओं में राज्यसत्ताएँ पैदा हो चुकी थीं इसलिए समूचे राज्य में विनिमय सुगम तरीक़े से हो, इसके लिए ऐसी मुद्रा को राज्य का अनुमोदन भी मिलने लगा ताकि वे सभी के लिए स्वीकार्य हों। अन्ततः सबसे कम नाशवान और सर्वाधिक एकसमान रूप में पायी जाने वाली धातु की खोज सोने और चाँदी पर आकर ख़त्म हुई और लगभग सारे सभ्य देशों में मुद्रा की भूमिका मुख्य तौर पर इन दो धातुओं ने निभाना शुरू किया।

इसके साथ, सभी मालों ने अपने मूल्य को सोने तथा गौण रूप में चाँदी में अभिव्यक्त करना शुरू किया। सोने की एक निश्चित मात्रा के उत्पादन में मान लें कि 10 घण्टे लगते हैं और सोने की उस मात्रा को हम 1 शिलिंग या 1 रुपये में अभिव्यक्त करते हैं, तो कोई भी माल जिसकी एक इकाई के उत्पादन में 10 घण्टे का अमूर्त मानवीय श्रम लगता है वह एक शिलिंग या एक रुपये के साथ विनिमय किया जायेगा। सोना यहाँ मुद्रा है और मूल्य की माप (measure of value) है और उसका मूल्यवर्ग (denomination) जैसे कि शिलिंग, पाउण्ड, आना, कौड़ी, पैसा, रुपया, फ़्रैंक, आदि नाम वस्तुतः क़ीमत का मानक (standard of price) है, ताकि मालों की अलग-अलग छोटी-बड़ी मात्राओं का सुचारू रूप से विनिमय हो सके। जब हम माल के मूल्य को मुद्रा में अभिव्यक्त करते हैं, तो उसे ही क़ीमत या दाम (price) कहा जाता है। शुरुआत में यह परिभाषा काफ़ी है। बाद में हम देखेंगे कि एक-एक अलग माल के मामले में अक्सर उसके मूल्य और उसकी क़ीमत में अन्तर होता है। लेकिन फ़िलहाल इस बुनियादी परिभाषा को लेकर हम विश्लेषण को आगे बढ़ायेंगे। यानी, मुद्रा के साथ मालों का मूल्य क़ीमत-रूप (price-form) धारण कर लेता है।

यह ध्यान रखना होगा कि मूल्य के रूप के विकास के ये चरण तार्किक (logical) चरण हैं, कालानुक्रमिक (chronological) चरण नहीं। यानी, इनके इतिहास में घटित होने की प्रक्रिया एक-दूसरे के साथ अतिच्छादित रही है और दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में आगे-पीछे चली है।

(अगले अंक में जारी)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 9

माल से मुद्रा तक

● अभिनव

मुद्रा एक रहस्यमयी चीज़ होती है। यह जिसकी जेब में पर्याप्त मात्रा में होती है, वह अपने आपको शक्तिशाली और दुनिया का राजा महसूस करता है। लेकिन वह भी इससे डरता है, इसकी पूजा-अर्चना करता है कि यह उसकी जेब में बनी रहे। जिसके पास यह नहीं होती वह भी इसकी शक्तियों के सामने नतमस्तक होता है और मनाता रहता है उसकी जेब में भी लक्ष्मी का प्रवेश हो जाये। लेकिन आख़िर यह मुद्रा चीज़ क्या है? इसकी इस रहस्यमयी शक्ति के पीछे का रहस्य क्या है? इस बात को समझने के लिए भी हमें माल और माल उत्पादन को समझना होगा। हमें मूल्य और विनिमय-मूल्य के रिश्तों के बारे में समझना होगा। इस दिशा में कुछ शुरुआती क़दम हम उठा चुके हैं। अब आगे बढ़ते हैं। लेकिन इसके लिए संक्षेप में थोड़ा पीछे जाते हैं।

सामाजिक श्रम विभाजन और विनिमय

हम जानते हैं कि मनुष्य के श्रम के उत्पादों का विनिमय केवल तभी शुरू हो सकता है जबकि समाज में **सामाजिक श्रम विभाजन** हो। यानी, यदि सामूहिक तौर पर या व्यक्तिगत तौर पर लोग अपने लिए उपयोगी हर चीज़ का उत्पादन स्वयं ही कर रहे हों (जैसा कि आदिम क़बीलाई समाज में होता था और जैसा कि कम्युनिस्ट समाज में एक बेहद उन्नत और ऊँचे स्तर पर होगा) तो वस्तुओं के विनिमय की कोई आवश्यकता ही नहीं होगी और वस्तुएँ केवल उपयोग-मूल्य के रूप में अस्तित्वमान होंगी और माल में तब्दील नहीं होंगी, क्योंकि माल केवल वे वस्तुएँ होती हैं जिनका विनिमय होता है या जिन्हें ख़रीदा-बेचा जाता है। तमाम उपयोगी वस्तुएँ माल में तभी तब्दील होती हैं, जब कि समाज में श्रम का विभाजन हो, यानी अलग-अलग उपयोगी वस्तुएँ अलग-अलग उत्पादक या उत्पादकों के समूह बना रहे हों। ऐसे में, विनिमय अनिवार्य हो जायेगा। सामाजिक श्रम विभाजन उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ विकसित हुआ, जो कि स्वयं मनुष्य की प्रकृति के साथ उत्पादक अन्तर्क्रिया में विकसित हुई। यह सामाजिक श्रम विभाजन उत्पादकों के पीठ पीछे विकसित होता है। इसके पीछे कोई सचेतन सुनियोजन या योजना नहीं होती है।

सामाजिक श्रम विभाजन के साथ, यानी जब अलग-अलग उत्पादक अलग-अलग वस्तुओं का उत्पादन करते हैं, तो वस्तुओं का विनिमय शुरू होता है और इसके साथ वे मालों में तब्दील हो जाती हैं। अब वे महज़ उपयोग-मूल्य नहीं रह जाती हैं, बल्कि साथ ही विनिमय-मूल्य में भी तब्दील हो जाती हैं। जैसा कि हमने देखा था विनिमय-मूल्य और कुछ नहीं बल्कि दो वस्तुओं के विनिमय की मात्राओं का अनुपात होता है। यानी वस्तु 'क' की कौन-सी मात्रा का वस्तु 'ख' की कितनी मात्रा से विनिमय होगा, यह अनुपात ही विनिमय-मूल्य होता है। हम यह भी जानते हैं कि विनिमय-मूल्य और कुछ नहीं बल्कि मूल्य का रूप होता है, यानी दोनों वस्तुओं के मूल्य के परिमाण या उनमें लगे अमूर्त मानवीय श्रम की मात्रा के आधार पर ही यह अनुपात तय हो सकता है। दूसरे शब्दों में, विनिमय-मूल्य वास्तव में दो वस्तुओं के मूल्य का अनुपात होता है, जो कि स्वयं कुछ नहीं बल्कि अमूर्त मानव श्रम की मात्रा है, जिसे कि सामाजिक रूप से आवश्यक श्रमकाल में नापा जाता है।

एडम स्मिथ को लगता था कि इन्सान अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के कारण विनिमय करता है और विनिमय के कारण सामाजिक श्रम विभाजन पैदा होता है। मार्क्स ने दिखाया कि मामला बिल्कुल उल्टा है। वास्तव में, यह सामाजिक श्रम विभाजन है, जो उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ पैदा होता है और उसके नतीजे के तौर पर विनिमय पैदा होता है। मार्क्स ने दिखलाया कि असल में विनिमय के विकसित होने के बहुत पहले आदिम क़बीलों के भीतर एक प्राकृतिक श्रम विभाजन विकसित हो चुका था, जो कि उम्र और लिंग के आधार पर था। बाद में, अलग-अलग क़बीलों के बीच विनिमय की शुरुआत हुई क्योंकि उनके बीच सामाजिक श्रम विभाजन पैदा हो चुका था और वे अलग-अलग वस्तुएँ बनाते थे और उन्हें एक दूसरे के उत्पादों की आवश्यकता थी। इसलिए सामाजिक श्रम विभाजन विनिमय से पहले पैदा हो चुका होता है और उसका उत्तरोत्तर विकास विनिमय को जन्म देता है और इस प्रकार माल उत्पादन की पूर्वशर्त है।

लेकिन यह भी सच है कि जब एक बार माल उत्पादन की शुरुआत हो जाती है, तो उत्पादक शक्तियों के उत्तरोत्तर विकास के साथ, यह माल उत्पादन सामाजिक श्रम विभाजन को और भी बढ़ाता जाता है। एक ही उत्पादन-प्रक्रिया बहुत-से अंगों में विभाजित होती है और कालान्तर में एक स्वतंत्र उत्पादन प्रक्रिया बन जाती है।

मानव सभ्यता के लिए समस्त उत्पादित उपयोग-मूल्यों का उत्पादन मानवीय श्रम करता है और इसलिए मानव सभ्यता का आधार और कुछ नहीं बल्कि मानवीय श्रम ही है। लेकिन समस्त समृद्धि के दो स्रोत हैं : श्रम और प्रकृति। मार्क्स ने कहा था कि श्रम समस्त सम्पदा का पिता है जबकि प्रकृति समस्त समृद्धि की माँ है। लेकिन समस्त मूल्य का केवल एक ही स्रोत है : श्रम। क्योंकि मूल्य और कुछ नहीं बल्कि माल में वास्तवीकृत हो चुका अमूर्त मानवीय श्रम ही है।

अब हम मूल्य और विनिमय-मूल्य के सम्बन्ध को थोड़ा गहराई और विस्तार से देखेंगे और इसी प्रक्रिया में मुद्रा के उद्भव और विकास की प्रक्रिया को समझेंगे।

मूल्य का रूप, या, विनिमय-मूल्य

हम जानते हैं कि **उपयोग-मूल्य का यथार्थ एक पूर्ण रूप से वैयक्तिक यथार्थ है।** इसका अर्थ यह है कि एक उपयोग-मूल्य को दूसरे उपयोग-मूल्य से केवल गुणात्मक रूप से अलग करके देखा जा सकता है। यह हरेक उपयोग-मूल्य को गुणात्मक रूप से विशिष्ट बनाता है। मिसाल के तौर पर, एक जूते और एक घड़ी की अपनी विशिष्ट गुणात्मक वैयक्तिकता है और गुण के आधार पर उनका एक विशिष्ट अस्तित्व है। इसलिए उपयोग-मूल्य के तौर पर हर माल एक विशिष्ट रूप के मूर्त श्रम का उत्पाद होता है और उसे उसकी विशिष्ट उपयोगिता के आधार पर गुणात्मक तौर पर अन्य मालों से अलग किया जा सकता है। जब हम कहते हैं कि एक उपयोग-मूल्य के तौर पर हर माल का एक पूर्ण रूप से वैयक्तिक यथार्थ होता है, तो उसका यही अर्थ है।

लेकिन मूल्य के तौर पर माल का यथार्थ शुद्ध रूप से एक सामाजिक यथार्थ होता है। यानी गुणात्मक तौर पर दो मालों के मूल्य में, यानी उनके वास्तवीकृत हुए अमूर्त मानवीय श्रम के बीच, कोई गुणात्मक अन्तर नहीं किया जा सकता है। वे दोनों ही अमूर्त श्रम की दो अलग मात्राएँ हैं और मूल्य के तौर पर उनके बीच केवल परिमाणात्मक तौर पर ही अन्तर किया जा सकता है, गुणात्मक तौर पर नहीं। गुणात्मक तौर पर, किसी माल का मूल्य सामान्य साधारण अमूर्त मानवीय श्रम ही है, और किसी भी अन्य माल में लगे सामान्य साधारण अमूर्त मानवीय श्रम से उसे गुणात्मक तौर पर अलग करके नहीं देखा जा सकता है। यह आम तौर पर मानवीय मस्तिष्क, नसों और मांसपेशियों का व्यय है, और कुछ भी नहीं और इस रूप में दो मालों में हुए मानवीय मस्तिष्क, नसों व मांसपेशियों के व्यय में कोई गुणात्मक फ़र्क़ नहीं किया जा सकता है। दो अलग-अलग उपयोग-मूल्यों के बीच विनिमय हेतु उनमें लगे मूर्त श्रमों को नज़रन्दाज़ करके उसमें लगे सामान्य साधारण मानवीय अमूर्त श्रम को देखना अनिवार्य है क्योंकि यही उनमें साझा व तुलनीय होता है और इसी की मात्रा के आधार पर दो मालों के विनिमय का अनुपात निर्धारित होता है। इसलिए मूल्यों के रूप में मालों का अस्तित्व पूर्ण रूप से सामाजिक होता है क्योंकि उसका सारतत्व पूर्ण रूप से एक सामान्य सामाजिक वस्तु, यानी अमूर्त मानवीय श्रम है।

मूल्य विनिमय की प्रक्रिया में ही अभिव्यक्त होता है, हालाँकि यह पैदा विनिमय में नहीं बल्कि उत्पादन में होता है। चूँकि मूल्य के रूप में माल का एक पूर्ण रूप से सामाजिक अस्तित्व होता है और उसकी सभी वैयक्तिक विशिष्टताओं को नज़रन्दाज़ करके ही उसके मूल्य का आकलन हो सकता है, इसलिए मूल्य के रूप में माल एक दूसरे से केवल मात्रात्मक या परिमाणात्मक तौर पर ही भिन्न होते हैं। मिसाल के तौर पर, ख़र्च हुए अमूर्त मानवीय श्रम की मात्रा के आधार पर, एक घड़ी के बदले दो जोड़ी जूतों का विनिमय हो सकता है। मूल्य के रूप में इनमें केवल मात्रात्मक सम्बन्ध ही होता है और मूल्य पर विचार करते हुए हम उपयोग-मूल्यों के रूप में उनकी विशिष्टताओं को नज़रन्दाज कर देते हैं।

ज़ाहिर है कि दो अलग मालों का ही विनिमय होता है क्योंकि कोई भी समान माल का विनिमय समान माल से नहीं करेगा। चूँकि मूल्य के रूप में एक माल का शुद्ध रूप से सामाजिक अस्तित्व होता है, इसलिए एक माल अपने मूल्य को दूसरे माल के रूप में ही अभिव्यक्त कर सकता है। जब एक माल अपने मूल्य को दूसरे माल की निश्चित मात्रा के रूप में अभिव्यक्त करता है, तो इसे ही हम विनिमय-मूल्य कहते हैं, यानी दो मालों के मूल्यों के आधार पर उनकी विनिमय की जाने वाली मात्राओं का अनुपात। या दो मूल्यों के विनिमय का अनुपात। इस रूप में विनिमय-मूल्य और कुछ नहीं बल्कि मूल्य का रूप (form of value) है। जब माल का मूल्य एक स्वतंत्र मूल्य-रूप ग्रहण करता है तो वह विनिमय-मूल्य का रूप लेता है।

मुद्रा और कुछ नहीं मूल्य के रूप के विकास का ही परिणाम है, जो कि स्वयं मूल्य और उपयोग-मूल्य के गहराते अन्तरविरोध का परिणाम होता है। हम सभी इस रूप से वाक़िफ़ हैं, यानी मुद्रा-रूप, जिसमें उपयोग-मूल्यों का हर सुराग़, हर निशान मिट चुका होता है। यह चमत्कृत करने वाला रूप, यानी मुद्रा, हमें रहस्यमयी शक्तियों से लैस दिखती है क्योंकि इसका विनिमय दुनिया में किसी भी माल के साथ किया जा सकता है। जिस पूँजीवादी समाज में समृद्धि अधिक से अधिक मालों का रूप ग्रहण करती जाती है, वहाँ अधिक से अधिक समृद्ध होने का अर्थ ही है अधिक से अधिक मालों का स्वामी होना। चूँकि मुद्रा का विनिमय किसी भी माल से किया जा सकता है, उसकी अधिक से अधिक मात्रा अधिक से अधिक समृद्धि का स्रोत होती है। मुद्रा की यही रहस्यमयी दिखने वाली शक्ति उसके पीछे के रहस्य और उसके प्रति अन्धभक्ति को पैदा करती है, जो कि और कुछ नहीं बल्कि माल-अन्धभक्ति का ही सबसे विकसित रूप है। यह माल-अन्धभक्ति समाज में तमाम इन्सानों के बीच के रिश्ते को मालों के बीच रिश्तों के रूप में छिपा देती है। वास्तव में, मालों के विनिमय के रूप में तो इन्सान एक-दूसरे के श्रम की विशिष्ट मात्राओं का विनिमय ही कर रहा होता है। इतनी सच्चाई तो एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो भी समझ चुके थे कि मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त मूल्य यानी दाम/क़ीमत तो बस नाममात्र का या सांकेतिक (nominal) विनिमय-मूल्य होता है, जो स्वयं माल के उत्पादन में ख़र्च श्रम की मात्रा से ही तय होता है।

बहरहाल, जब मनुष्य मिलकर सामूहिक तौर पर सभी मालों का उत्पादन करता था, तो उसके श्रम का यह सामाजिक चरित्र, उसके बीच के रिश्ते उसे सीधे और साफ़ तौर पर दिखायी देते थे। लेकिन जब समाज में श्रम विभाजन हो जाता है और लोगों के बीच का श्रम केवल विनिमय के ज़रिए ही जुड़ता है और अपने सामाजिक अस्तित्व और चरित्र पर दावा करता है, तो इन्सानों के बीच के रिश्ते मालों के बीच रिश्तों की सतह के नीचे छिप जाते हैं। **यही माल-अन्धभक्ति पैदा होने का स्रोत होता है।** लेकिन आदिम काल में जब दो अलग-अलग मालों के उत्पादक एक-दूसरे से आवश्यकता की सांयोगिकता के आधार पर (यानी जिसमें इत्तफ़ाकन या संयोग के तौर पर पहले माल के उत्पादक को दूसरे माल उत्पादक के माल की आवश्यकता होती है और दूसरे माल के उत्पादक को पहले माल उत्पादक के माल की आवश्यकता होती है) विनिमय करते थे, तो अभी श्रम का यह सामाजिक चरित्र और इन्सानों के रिश्तों पर एक झीना पर्दा गिरा होता था जिसके पीछे अस्पष्ट तौर पर उन वास्तविक मानव सम्बन्धों को कुछ विश्लेषण और प्रयास से देखा जा सकता था। लेकिन जब मालों का प्रत्यक्ष विनिमय होने के बजाय मुद्रा की मध्यस्थता से मालों का संचरण होने लगा, तो ये रिश्ते हज़ारों पर्दों के पीछे चले गये और मालों के संचरण के विराट ताने-बाने में, इन्सानों के बीच का रिश्ता एकदम खो-सा गया। अब जो दिखता है, वह है चमकती-दमकती मुद्रा की रहस्यमयी ताक़त जिसके सामने सभी नतमस्तक हैं। इस मंज़िल पर माल-अन्धभक्ति अपने चरम पर पहुँच जाती है, जिसके ठोस रूप हमें दुकानों पर लटकी नींबू-मिर्च से लेकर गल्ले पर लिखे 'शुभ-लाभ' तक में दिख जाता है।

लेकिन यह मुद्रा-रूप विकसित कैसे हुआ, यदि हम इसे ऐतिहासिक और वैज्ञानिक तौर पर समझ लें, तो रहस्य का यह घेरा, मुद्रा का यह तिलिस्म टूट जाता है। हम अभी इसी ऐतिहासिक विकास को वैज्ञानिक रूप में समझेंगे।

(पेज 16 पर जारी)

माल से मुद्रा तक

(पेज 15 से आगे)

मूल्य के रूप, यानी विनिमय-मूल्य, के विकास के तार्किक चरण

सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि माल में उपयोग-मूल्य और मूल्य के बीच एक अन्तरविरोध होता है। यह अन्तरविरोध व्यक्तिगत श्रम और सामाजिक श्रम के बीच के अन्तरविरोध को अभिव्यक्त करता है। माल उत्पादक समाज में सभी माल उत्पादक एक दूसरे से अलग, एक दूसरे से स्वतंत्र और एक दूसरे के बारे में अज्ञात, अपने-अपने मालों का उत्पादन करते हैं। उन्हें नहीं पता होता है कि उनके माल के लिए बाज़ार में कितनी माँग है या उसे ख़रीदार मिलेंगे या नहीं। वे एक आकलन और अपेक्षा के आधार पर माल का उत्पादन करते हैं। यदि उनका माल बिकता है, तो उनका श्रम सामाजिक रूप से उपयोगी श्रम के रूप में मान्यता प्राप्त करता है और उपयोग-मूल्य और मूल्य के बीच का अन्तरविरोध हल होता है। लेकिन अगर उनके माल को ख़रीदार नहीं मिलता, तो उनका माल सामाजिक रूप से उपयोगी श्रम नहीं माना जाता और उसका मूल्य भी वास्तवीकृत नहीं होता और उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता है। यदि किसी माल उत्पादक के साथ लगातार ऐसा होता है तो वह किसी अन्य माल का उत्पादन करना शुरू करता है और इस प्रकार समाज में मौजूद सामाजिक श्रम विभाजन बदलता है। माल उत्पादक समाज में यह अराजक तरीक़े से होता है, इसमें अनिश्चितता होती है। यह अनिश्चितता स्वयं माल अन्धभक्ति को ही बढ़ावा देती है। आपने अगर तमाम दुकानदारों को या पूँजीपतियों को अपने माल के स्टॉक के आगे अगरबत्ती जलाकर पूजा करते देखा हो, तो आप समझ सकते हैं कि बिकवाली की अनिश्चितता किस प्रकार माल अन्धभक्ति को बढ़ावा देती है और माल को एक रहस्यमय आभामण्डल दे देती है।

माल उत्पादक समाज और पूँजीवादी माल उत्पादन पर आधारित समाज में उत्पादन किसी सामाजिक योजना के आधार पर नहीं होता। इसका कोई आकलन नहीं किया जाता है कि किस वस्तु या सेवा की कितनी आवश्यकता है और उसे किस मात्रा में योजनाबद्ध तौर पर सामूहिक श्रम के द्वारा पैदा किया जाना है। इसलिए मालों का बिकना कोई सहज-सरल प्रक्रिया नहीं होती है। **यह स्वयं एक अन्तरविरोध के हल होने का सवाल होता है : उपयोग-मूल्य और मूल्य के बीच का अन्तरविरोध।** इस अन्तरविरोध के विकास की प्रक्रिया के ही एक निश्चित चरण में मुद्रा रूप पैदा होता है, मुद्रा अस्तित्व में आती है। इस अन्तरविरोध के ही तार्किक चरणों की वैज्ञानिक व्याख्या पेश करते हुए मार्क्स मुद्रा के रहस्यमयी आवरण को चीरते हैं।

मार्क्स विनिमय-मूल्य के चार रूपों की बात करते हैं : **सांयोगिक-रूप, विस्तारित-रूप, सामान्य-रूप और मुद्रा-रूप।** इन पर कुछ विस्तार में बात करने की ज़रूरत है।

सांयोगिक-रूप (accidental form) वह रूप है जिस पर मार्क्स सबसे ज़्यादा समय ख़र्च करते हैं क्योंकि मुद्रा रूप के बीज ठीक इसी रूप में मौजूद होते हैं और यदि इस बुनियादी रूप को सही तरीक़े से समझ लिया गया तो मुद्रा का रहस्योद्घाटन करना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है। इस सांयोगिक-रूप में ही हम मूल्य और उपयोग-मूल्य के बीच के अन्तरविरोध को स्पष्ट तौर पर चिह्नित कर सकते हैं, जो कि अन्ततः मुद्रा को जन्म देता है। मूल्य-रूप (value-form) की ख़ासियत यह है दो मालों के मूल्यों में अन्तर आने के बावजूद उनका एक दूसरे के सापेक्ष विनिमय-मूल्य समान रह सकता है। मिसाल के तौर पर, यदि माल 'क' के उत्पादन में एक समय 2 घण्टे का अमूर्त मानवीय श्रम लगता था और माल 'ख' के उत्पादन में उसी समय 4 घण्टे का अमूर्त मानवीय श्रम लगता था, तो उस समय माल 'ख' की एक इकाई के बदले माल 'क' की दो इकाइयों का विनिमय होगा। अगर एक वर्ष बाद दोनों ही मालों के उत्पादन में श्रम की उत्पादकता बराबर दर से बढ़ जाती है और अब माल 'क' के उत्पादन में 1 घण्टे का श्रम लगता है, जबकि माल 'ख' के उत्पादन में 2 घण्टे का श्रम लगता है, तो दोनों मालों का अन्तर्भूत मूल्य तो आधा हो गया, लेकिन उनका एक-दूसरे के सापेक्ष विनिमय-मूल्य समान रहा, यानी, अब भी माल 'ख' की एक इकाई के बदले माल 'क' की दो इकाइयों का विनिमय होगा। **इस प्रकार मूल्य-रूप की यह विशिष्टता होती है कि मालों का मूल्य समान रहते हुए उनका विनिमय-मूल्य बदल सकता है या उनके मूल्य के बदलने के बावजूद उनका विनिमय-मूल्य समान रह सकता है।**

सांयोगिक-रूप की विशिष्टता क्या है? यहाँ दो मालों का विनिमय सांयोगिक तौर पर होता है, जिसमें माल 'क' की एक विशेष मात्रा का विनिमय माल 'ख' की एक विशिष्ट मात्र के साथ होता है। यानी :

x माल A = y माल B

यानी, माल A की x मात्रा का विनिमय माल B की y मात्रा से हो रहा है। यह सांयोगिक परस्पर आवश्यकता, यानी दोनों उत्पादकों की आवश्यकताओं की सांयोगिकता के आधार पर हो रहा विनिमय है जिसे अर्थशास्त्र की भाषा में co-incidence of needs कहा जाता है। मार्क्स इस मासूम से दिखने वाले समीकरण में अन्तर्निहित उस अन्तरविरोध को पकड़ते हैं और उसकी ओर हमारा ध्यान खींचते हैं, जो समूचे पूँजीवादी समाज और अर्थव्यवस्था के मूल में, उसकी जड़ में है : **मूल्य और उपयोग-मूल्य के बीच का अन्तरविरोध।**

मार्क्स बताते हैं कि यहाँ माल A **सापेक्ष मूल्य** (relative value) है, जबकि माल B **समतुल्य मूल्य** (equivalent value) है। दूसरे शब्दों में, माल A अपने मूल्य को माल B के रूप में अभिव्यक्त कर रहा है। माल A, यानी वह माल जिसका मूल्य इस समीकरण में अभिव्यक्त किया जाना है, यानी जो माल सापेक्ष मूल्य की भूमिका निभा रहा है, उसके लिए माल B ही मूल्य का मूर्त रूप है। अपने मूल्य को अभिव्यक्त करने के लिए माल A को एक दूसरे माल की आवश्यकता है, जो सांयोगिक तौर पर इस मामले में उसे माल B के रूप में मिलता है और माल A मानो कह उठता है कि "B ही तो मूल्य है!" यानी, माल A को उक्त मामले में अपने मूल्य को स्वतंत्र रूप में अभिव्यक्त करने के लिए माल B की आवश्यकता है। इसलिए माल A के लिए माल B का उपयोग-मूल्य ही यह है कि वह मूल्य को अभिव्यक्त करता है। माल A के लिए माल B ही मूल्य की माप (measure of value) है। वास्तव में, मुद्रा भी माल B वाला काम ही करती है, यानी मूल्य की माप होने का काम, लेकिन सिर्फ़ माल A के लिए नहीं बल्कि सभी मालों के लिए। यदि उपरोक्त समीकरण को हम पलटकर लिखें तो माल B अपने मूल्य को माल A के उपयोग-मूल्य में अभिव्यक्त करेगा और माल A उसके लिए समतुल्य मूल्य बन जायेगा, यानी जो उसके लिए मूल्य की माप होगा, मूल्य के समतुल्य होगा। यहाँ हम समीकरण के जिस ओर खड़े होंगे, उसके अनुसार, सापेक्ष मूल्य और समतुल्य मूल्य बदल जायेंगे। अगर हम माल A के नज़रिए से देखेंगे, तो माल B समतुल्य मूल्य होगा, मूल्य की माप होगा और अगर हम माल B के परिप्रेक्ष्य से देखेंगे, जिसमें कि माल B के मूल्य को अभिव्यक्त किया जाना होगा और माल B सापेक्ष मूल्य होगा, तो भूमिकाएँ पलट जायेंगी और अब माल A समतुल्य मूल्य यानी मूल्य के समतुल्य या मूल्य के माप की भूमिका निभायेगा।

जैसा कि हम देख सकते हैं कि आदिम काल में होने वाले इस सांयोगिक विनिमय में ही मुद्रा के जन्म के बीज को देखा जा सकता है। माल A के नज़रिए से देखें तो माल B और कुछ नहीं बल्कि मुद्रा की भूमिका, यानी मूल्य के रूप की, यानी मूल्य के माप की भूमिका निभा रहा है क्योंकि माल A अपना मूल्य माल B के मूर्त रूप में ही अभिव्यक्त कर रहा है और उसके लिए मूल्य का मूर्त रूप और कुछ नहीं बल्कि माल B है। माल B की यह भूमिका ही मुद्रा निभाती है, लेकिन सांयोगिक-रूप के समान किसी एक माल के लिए नहीं, बल्कि सभी मालों के लिए। यानी वह एक **सार्वभौमिक समतुल्य** (universal equivalent) होती है, मूल्य का सार्वभौमिक रूप होती है। लेकिन यही बात पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों की निगाह से ओझल हो जाती है कि जब तक सोने का चमकता-दमकता रूप, या गाँधी जी के फ़ोटो वाली हरी पत्ती नहीं आयी होती है, तो भी हम माल B में मुद्रा के बीज रूप को देख सकते हैं, क्योंकि वह माल A के लिए वही भूमिका निभा रहा होता है, जो कि मुद्रा सभी मालों के लिए निभाती है। माल B को सापेक्ष मूल्य मान लें, तो माल A उसके लिए समतुल्य मूल्य या मुद्रा की ही भूमिका निभा रहा होता है, यानी माल B के मूल्य की माप, उसके मूल्य का रूप, उसके मूल्य का समतुल्य।

लेकिन यह मूल्य का रूप मुद्रा के चकाचौंध कर देने वाले रूप तक कैसे पहुँचा इसे समझने के लिए हमें उपयोग-मूल्य और मूल्य के अन्तरविरोध के विकास के दूसरे तार्किक चरण पर निगाह डालनी होगी : यानी **विस्तारित-रूप** (expanded form)।

विस्तारित रूप कुछ यूँ दिखता है :

x माल A = y माल B
x माल A = z माल C
x माल A = w माल D
x माल A = v माल E
….

यानी, जब एक ही माल की एक मात्रा का विनिमय बहुत-से अलग-अलग मालों की निश्चित मात्राओं से होने लगता है। जैसे-जैसे सामाजिक श्रम विभाजन विकसित होता है, वैसे-वैसे कई अलग-अलग मालों का उत्पादन होना शुरू हो जाता है, अधिक से अधिक वस्तुएँ मालों में तब्दील होती हैं। आम तौर पर, सभी सभ्यताओं के इतिहास में देखा गया है कि उन सभ्यताओं में अलग-अलग वस्तुओं की अलग-अलग मात्रा में सामाजिक आवश्यकता और उपलब्धता के आधार पर उनमें से एक या कुछ वस्तुओं की माँग ज़्यादा होती है और अलग-अलग माल उत्पादक उससे अपने माल का विनिमय करना चाहते हैं क्योंकि उन सभी को उसकी आवश्यकता होती है। कृषि व पशुपालन आधारित समाजों के इतिहास में कई बार यह भूमिका कई पशुओं जैसे कि गाय या बकरी (यानी ढोर-डंगर) और अलग-अलग अनाजों ने भी निभायी। यहाँ तक कि कुछ समाजों में इसकी भूमिका तम्बाकू, कौड़ी आदि तक ने निभायी। नतीजतन, अलग-अलग समाजों के इतिहास में कोई एक या कुछ माल अधिक महत्वपूर्ण बन जाते हैं और वे ज़्यादा विनिमय योग्य होते हैं क्योंकि ज़्यादा लोगों को उसकी आवश्यकता होती है। वैदिक काल में हमारे देश में ऐसी स्थिति गायों व कुछ अनाजों की थी।

इस विस्तारित-रूप में यह बात सामने आ जाती है कि माल B में ऐसा कुछ ख़ास नहीं था कि केवल वह ही मूल्य के रूप, मूल्य की माप व उसके समतुल्य की भूमिका निभा सकता है और यह कि सांयोगिक रूप में माल A की एक मात्रा का माल B की एक निश्चित मात्रा से विनिमय महज़ सांयोगिक था जिसमें माल A लिए माल B मूल्य की माप की भूमिका में था और माल B के लिए माल A समतुल्य मूल्य था। लेकिन विस्तारित-रूप में हमारे पास माल A के साथ कई अन्य मालों के विनिमय समीकरण सामने हैं और यह भी स्पष्ट है कि मूल्य का अपने आप में माल B के उपयोग-मूल्य से कोई नैसर्गिक या अन्तर्भूत रिश्ता नहीं था।

इसके बाद की मंज़िल यानी मूल्य के **सामान्य-रूप** (General Form) की मंज़िल विस्तारत-रूप की मंज़िल से एक छोटे-से क़दम के साथ सामने आ जाती है। इसके लिए हम विस्तारित-मूल्य रूप को ही पलट देना है। यानी अब माल A सापेक्ष मूल्य की भूमिका में और माल B, माल C, माल D, माल E आदि समतुल्य मूल्य की भूमिका में नहीं हैं, जिनमें अलग-अलग विनिमयों में माल A अपना मूल्य अभिव्यक्त कर रहा है, बल्कि माल B, माल C, माल D, माल E आदि सभी सापेक्ष मूल्यों की भूमिका में हैं और ये सभी माल अपने मूल्य को माल A में अभिव्यक्त कर रहे हैं, जो कि अब अन्य सभी मालों के लिए समतुल्य मूल्य, या मूल्य की माप, या मूल्य के रूप में की भूमिका निभा रहा है। अब समीकरण कुछ यूँ दिखेंगे :

y माल B = x माल A
z माल C = x माल A
w माल D = z माल C
v माल E = w माल D
….

उपरोक्त रूप को ही हम सामान्य-रूप कहते हैं। सामान्य इसलिए, क्योंकि इसमें सभी माल एक विशिष्ट माल में अपने मूल्य को अभिव्यक्त कर रहे हैं। एक विशिष्ट माल सभी मालों के लिए मूल्य का रूप, मूल्य का समतुल्य और मूल्य की माप बन गया है। यह एक मामले में पहले सांयोगिक या तात्विक रूप से भी मेल खाता है क्योंकि सभी माल किसी एक माल में अपने मूल्य को अभिव्यक्त कर रहे हैं, और यह सामान्य रूप भी है क्योंकि यह एक माल है जो सभी मालों के मूल्य के लिए मूल्य का मूर्त रूप बन गया है। अब हरेक माल को अपने मूल्य को अभिव्यक्त करने के लिए अपने-अपने समतुल्य नहीं ढूँढ़ने हैं। यानी उन्हें हर विनिमय के समय अलग-अलग प्रकार के मूर्त श्रमों का अमूर्तन कर अपने मूल्य को अभिव्यक्त नहीं करना है। मानो अब सभी माल एकजुट होकर, एक साथ आकर, किसी एक माल को अपना सार्वभौमिक समतुल्य मानते हैं, जिसमें कि वे सभी अपने मूल्य को अभिव्यक्त करते हैं। मसलन, कैलीफ़ोर्निया, अमेरिका में एक समय में तम्बाकू यह भूमिका निभाने लगा था, चीन में कौड़ियाँ और वैदिक काल में भारत में गाय और कुछ अनाज यह भूमिका निभाते थे क्योंकि समाज के अधिकांश लोगों को इन विशिष्ट मालों की ज़रूरत थी, उसके लिए उनके बीच माँग थी। इसलिए एक लम्बी प्रक्रिया में कुछ माल ऐसा रूप ग्रहण कर लेते हैं,

(पेज 14 पर जारी)

मज़दूर आन्दोलन में मौजूद किन प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ मज़दूर वर्ग का लड़ना ज़रूरी है?

1. क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पहली क़िस्त)

● शिवानी

आज भारत में मज़दूर आन्दोलन एक अभूतपूर्व संकट का शिकार है। हालाँकि यह भी उतना ही सच है कि यह संकट आज ही नहीं पैदा हुआ है। पिछले लम्बे अरसे से मज़दूर आन्दोलन जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है उसके वस्तुगत और मनोगत दोनों ही कारण हैं। ज़ाहिरा तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूर वर्ग पर मालिकों के वर्ग और उनकी पूँजीवादी राज्यसत्ता द्वारा चौतरफ़ा हमले होते रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मालिकों-पूँजीपतियों की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम सरकारें और पूरी की पूरी पूँजीवादी राज्य मशीनरी मज़दूरों के शरीर से ख़ून का आख़िरी क़तरा भी निचोड़ लेने के लिए और उसे मुनाफ़े में तब्दील करने के लिए तमाम मज़दूर-विरोधी नीतियाँ और क़ानून बनाती और लागू करती हैं। हर मज़दूर इसे अपनी जीवन-स्थितियों से देखता-समझता भी है, भले ही उसके पास इसका कोई वैज्ञानिक विश्लेषण मौजूद न हो। भारत में 2014 में फ़ासीवादी मोदी सरकार के सत्तासीन होने के बाद से तो यह सिलसिला बेतहाशा तेज़ी से आगे बढ़ा है। आज पहले के मुक़ाबले पूँजी की ताक़तें मज़दूर वर्ग पर और अधिक हावी हैं।

लेकिन मज़दूर आन्दोलन के समक्ष उपस्थित इस संकट के कई ऐसे कारण भी हैं जो स्वयं आन्दोलन के भीतर मौजूद हैं। ऐसी कई प्रवृत्तियाँ आन्दोलन के भीतर मौजूद हैं जो अन्दर से मज़दूरों के संघर्षों को कमज़ोर और खोखला बनाती जाती हैं। हालाँकि इस मसले पर एक इतिहास-दृष्टि की आवश्यकता भी है। यह समझना भी उतना ही ज़रूरी है कि मज़दूर आन्दोलन में व्याप्त ये समस्याएँ अकेले हमारे देश या काल की पैदावार नहीं हैं। ऐतिहासिक तौर पर बात करें तो मज़दूर आन्दोलन में तमाम ऐसी प्रवृत्तियाँ सिर उठाती रही हैं जो कि अपनी अन्तर्वस्तु में मालिकों और पूँजीपतियों के विचारों यानी कि बुर्जुआ विचारधारा से प्रेरित थीं और मज़दूर आन्दोलन में, सचेतन या अचेतन तौर पर, पूँजीपति वर्ग के पक्ष की नुमाइन्दगी करती थीं और इसी वर्ग की सेवा करती थीं और आज भी ऐसा ही कर रही हैं।

यह ठीक इसलिए होता है क्योंकि सर्वहारा वर्ग की राजनीति और विचारधारा स्वतःस्फूर्त रूप में आन्दोलन से ही पैदा नहीं हो जाती है बल्कि सचेतन तौर पर मज़दूर आन्दोलन में इसका प्रवेश कराना होता है। सर्वहारा चेतना का मतलब मज़दूरों में मौजूद आम स्वतःस्फूर्त चेतना नहीं होता है बल्कि सर्वहारा चेतना हिरावल यानी कि पार्टी के अभिकरण द्वारा सचेतन तौर पर निःसृत की जाने वाली चेतना होती है और सतत् राजनीतिक संघर्षों और राजनीतिक प्रचार के ज़रिए संघटित होती है, यानी बनती है। इसका मतलब यह है कि मज़दूर वर्ग के बीच मौजूद तमाम विचार स्वतःस्फूर्त रूप से सर्वहारावर्गीय विचार नहीं होते हैं और यही कारण है कि तमाम विजातीय यानी कि सर्वहारावर्गीय दृष्टिकोण के विपरीत खड़े विचार आन्दोलन के अन्दर अपनी स्वाभाविक गति से पनपते रहते हैं।

इन तमाम ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों में सबसे प्रमुख और सबसे नुक़सानदेह प्रवृत्ति **अर्थवाद** की प्रवृत्ति है। अर्थवाद दरअसल मज़दूरों के लिए आर्थिक संघर्ष को ही, यानी वेतन-भत्ते और बेहतर कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष को ही, समस्त आन्दोलन का फलक बना देता है और इस मुग़ालते में रहता है कि मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक चेतना स्वतःस्फूर्त तरीक़े से इन्हीं आर्थिक संघर्षों मात्र से पैदा हो जायेगी। अर्थवाद के कारण ही मज़दूर वर्ग राजनीतिक प्रश्न उठाने में, जिसमें राजनीतिक सत्ता का प्रश्न सर्वोपरि है, असमर्थ हो जाता है और केवल दुवन्नी-अठ्ठन्नी, भत्तों-सहूलियतों की लड़ाई के गोल चक्कर में घूमता रहता है। मज़दूर वर्ग एक राजनीतिक वर्ग के तौर पर संघटित और संगठित हो ही नहीं सकता है अगर उसके संघर्ष का क्षितिज केवल आर्थिक माँगों तक सीमित है। इसका मतलब यह नहीं है कि मज़दूर वर्ग आर्थिक माँगों की लड़ाई नहीं लड़ेगा बल्कि इसका अर्थ केवल इतना है कि एक राजनीतिक वर्ग के बतौर वह इन आर्थिक संघर्षों को भी राजनीतिक तौर पर लड़ेगा।

अर्थवाद की प्रवृत्ति वास्तव में पूँजीवाद के आर्थिक तर्क को मज़दूर आन्दोलन में स्थापित करने का काम करती है और मज़दूरों को वेतन-भत्ते बढ़वाने के लिए ही संघर्ष करने की बात पर ज़ोर देती है। आज तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनें जहाँ एक तरह अर्थवाद का बेहद भोंडा संस्करण प्रस्तुत करती हैं यानी कि अर्थवाद का संशोधनवादी-दक्षिणपन्थी संस्करण पेश करती हैं, वहीं कई अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठन जुझारू क़िस्म के अर्थवाद यानी कि "वामपन्थी" अर्थवाद के मुज़ाहिरे पेश करते दीखते हैं। इस चर्चा पर हम आगे आयेंगे। वास्तव में, **अर्थवाद मज़दूर वर्ग से क्रान्ति का अभिकरण यानी क्रान्तिकारी मार्क्सवादी राजनीति व क्रान्तिकारी हिरावल पार्टी की भूमिका की अहमियत को समझने का सामर्थ्य ही छीन लेता है और इसलिए सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों ही स्तरों पर, मज़दूर आन्दोलन में बेहद ख़तरनाक प्रवृत्ति और रुझान है।**

इसलिए आज हम अर्थवाद की इसी प्रवृत्ति के विषय में कुछ ज़रूरी बातें जानने–समझने का प्रयास करेंगे और यह भी देखेंगे कि किस प्रकार इतिहास में भी मज़दूर आन्दोलन में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी हिरावल ताक़तों ने अर्थवाद की बुर्जुआ विचारधारा को सैद्धान्तिक और व्यावहारिक, दोनों ही स्तरों पर, धूल चटायी थी और इसे तहस-नहस कर दिया था। चूँकि पूँजीवाद अपनी स्वतः गति से आज भी इन तमाम ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों को और ख़ास तौर पर अर्थवाद की प्रवृत्ति को जन्म दे रहा है, इसलिए आज भी हमारे लिए यह जानना उपयोगी होगा कि इसके विरुद्ध मौजूदा दौर में अपने संघर्षों को कैसे निर्देशित करें। **मज़दूर वर्ग के महान शिक्षक लेनिन ने अर्थवाद के विरुद्ध समझौताविहीन वैचारिक संघर्ष चलाकर मज़दूर आन्दोलन में सर्वहारा राजनीतिक लाइन का प्रतिनिधित्व किया था और बुर्जुआ अर्थवादी लाइन को परास्त किया था।** यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम सैद्धान्तिक संघर्ष के दौरान ही लेनिन द्वारा सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी कैसी हो, यानी कम्युनिस्ट पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा को निरूपित किया गया था।

यदि आप 'अर्थवाद' शब्द के मूल पर ग़ौर करेंगे तो आप समझ जायेंगे कि अर्थवाद की प्रवृत्ति आर्थिक कारकों को राजनीतिक कारकों के ऊपर तरजीह देती है। **यानी यह राजनीति को कमान में रखने की बजाय आर्थिक कारकों को कमान में रखती है।** यहाँ जो बात समझनी सबसे ज़्यादा ज़रूरी है वह यह कि मज़दूर वर्ग स्वतःस्फूर्त रूप से जो चेतना पैदा करता है वह आर्थिक माँगों से आगे नहीं जाती और वह अपने आप में सर्वहारा चेतना नहीं होती। अगर मज़दूरों के बीच पायी जाने वाली इसी **स्वतःस्फूर्ततावाद** की सोच को आगे बढ़ा दिया जाये तो वह **अर्थवाद, ट्रेड यूनियनवाद, मज़दूरवाद, पेशावादी संकीर्णतावाद, ग़ैर-पार्टी क्रान्तिवाद, अराजकतावाद-संघाधिपत्यवाद** आदि ग़ैर-सर्वहारा प्रवृत्तियों तक चली जाती है। इन सभी प्रवृत्तियों पर भी हम आने वाले दिनों में बात करेंगे। **लेनिन** स्वयं इन प्रवृत्तियों-रुझानों के कटु आलोचक थे और इसीलिए क्रान्ति से पहले मज़दूर वर्ग के आन्दोलन में भी और क्रान्ति के बाद सर्वहारा वर्ग की तानाशाही में भी वह **स्वतःस्फूर्ततावाद** के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष चलाते रहे और **सचेतनता और राजनीति की अनिवार्यता** के पहलू को रेखांकित करते हुए क्रान्तिकारी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को अपरिहार्य मानते रहे। और साथ ही यह भी मानते रहे कि पार्टी को जनसमुदायों के प्रति अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को बनाये रहते हुए, जनसमुदायों से एक जीवन्त सम्बन्ध भी क़ायम रखना होगा और जनता से सीखना भी होगा। यानी मज़दूर आन्दोलन में सही क्रान्तिकारी राजनीति का प्रवेश वह पूर्वशर्त है जो **मज़दूर वर्ग को एक ऐसे राजनीतिक वर्ग के तौर पर संगठित, संघटित और स्थापित** करता है जिसकी एक राजनीतिक परियोजना है, यानी राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति।

लेनिन के अनुसार अर्थवाद का सारतत्व उस विचारधारात्मक रुझान से था जो कि सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी दर्शन, विज्ञान और विचारधारा यानी कि मार्क्सवाद को महज एक "आर्थिक सिद्धान्त" में तब्दील कर देता था और मार्क्सवाद की क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु को ही ख़ारिज करने का काम कर देता था। अर्थवाद के अनुसार सभी सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या केवल आर्थिक कारकों के विकास के ज़रिए की जा सकती है। दार्शनिक व राजनीति-अर्थशास्त्रीय अर्थों में बात करें तो अर्थवाद उत्पादक शक्तियों के विकास को ग़ैर-दन्द्वात्मक रूप से इतिहास की प्रेरक शक्ति के रूप में देखता है और मानता है कि आर्थिक कारकों में होने वाले बदलावों के ज़रिए सामाजिक शक्तियाँ अपने आप, स्वतःस्फूर्त रूप से परिवर्तन की ओर क्रमिक प्रक्रिया में आगे बढ़ती हैं। निश्चित तौर पर, व्यापक अर्थों में उत्पादक शक्तियों का पहलू इतिहास में अधिक गतिमान कारकों की भूमिका निभाता है, लेकिन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन यानी क्रान्ति के बाद उत्पादन सम्बन्धों का कारक भी पलटकर उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रेरणा प्रदान करता है। यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के बीच एक दन्द्वात्मक सम्बन्ध होता है, न कि कोई यांत्रिक-अधिभूतवादी सम्बन्ध। इसी अर्थवादी और उत्पादक शक्ति-वादी समझदारी के चलते अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन को उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी में भारी क्षति उठानी पड़ी थी।

इसके अलावा यह बात भी समझना आवश्यक है कि अर्थवाद का भटकाव मज़दूर आन्दोलन में दोनों ही रूपों या संस्करणों में प्रकट होता है : **दक्षिणपन्थी अवसरवाद के रूप में** (जैसे कि भारत में भाकपा, माकपा, लिबरेशन आदि जैसी संशोधनवादी पार्टियाँ व उनसे सम्बद्ध ट्रेड यूनियनें जैसे सीटू, ऐटक, ऐक्टू आदि व रूस के मेंशेविक, अर्थवादी और "क़ानूनी" मार्क्सवादी) और **"वामपन्थी" भटकाव के रूप में** (जैसे कि भारत में मौजूद 'मज़दूर सहयोग केन्द्र' जैसे अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी ग़ैर-पार्टी क्रान्तिवादी संगठन, 'इन्क़लाबी मज़दूर केन्द्र' जैसे जुझारू अर्थवादी संगठन इत्यादि और रूसी कम्युनिस्ट आन्दोलन में मौजूद 'वर्कर्स अपोज़ीशन' जैसे अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी, बुख़ारिन के नेतृत्व वाला "वामपन्थी" विपक्ष आदि)। इन दोनों ही भटकावों में जो बात साझा है वह यह है कि ये दोनों ही आर्थिक कारकों को राजनीतिक कारकों पर प्रधानता देते हैं और इस रूप में मार्क्सवाद की बुनियादी शिक्षा को दरकिनार करते हैं। संशोधनवादी अर्थवाद जोकि दक्षिणपन्थी अवसरवाद के रूप में सामने आता है, आर्थिक कारकों की प्रधानता का हवाला देकर क्रान्तिकारी राजनीति और क्रान्ति की आवश्यकता को ही नकारता है; आर्थिक संघर्षों व मज़दूर आन्दोलन में स्वतःस्फूर्ततावाद का अनालोचनात्मक महिमा-मण्डन करते हुए उनके ही राजनीतिक संघर्ष में बदल जाने की बात करता है; ट्रेड यूनियन संघर्ष और हड़तालों को मज़दूर वर्ग का एकमात्र लक्ष्य बनाकर राजनीतिक सत्ता के प्रश्न को मज़दूर वर्ग के एजेण्डा से ही ग़ायब कर देता है; बुर्जुआ वर्ग से सहयोग-सहकार की बात करते हुए वर्ग संघर्ष की बजाय वर्ग सहयोगवादी कार्यदिशा को अपनाता है। वहीं दूसरी ओर, "वामपन्थी" अर्थवाद क्रान्ति की ज़रूरत को सैद्धान्तिक तौर पर तो नहीं नकारता है और न ही सत्ता के प्रश्न को मज़दूर वर्ग की राजनीति से बाहर करता है, लेकिन यह इस पूरी प्रक्रिया में हिरावल यानी पार्टी की भूमिका को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में व औपचारिक या अनौपचारिक तौर पर नकारता है; इस रूप में यह भी मज़दूरों के स्वतःस्फूर्ततावाद का अनालोचनात्मक महिमा-मण्डन करते हुए इसका जश्न मनाता है, स्वतःस्फूर्त मज़दूरों या जनसमुदायों के उभार के पीछे घिसटने की हिमायत करता है, वस्तुतः मानता है कि मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना में प्रवेश के लिए किसी "बाह्य" हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती और मज़दूर वर्ग अपने अनुभवों के ज़रिए स्वतः इस चेतना को हासिल कर सकता है।

जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया है कि भारत में 'मज़दूर सहयोग केन्द्र' जैसे संगठन मज़दूर वर्ग की इसी स्वतःस्फूर्तता के पूजक हैं और अगर वे पार्टी की ज़रूरत को नाम लेकर ख़ारिज

(पेज 18 पर जारी)

1. क्रान्तिकारी सर्वहारा को अर्थवाद के विरुद्ध निर्मम संघर्ष चलाना होगा!

(पेज 17 से आगे)

नहीं करते हैं तो भी वे अपने व्यवहार के ज़रिए वस्तुतः ऐसा करते हुए ही पाये जाते हैं। मारुति मज़दूरों के आन्दोलन से लेकर अन्य कई मज़दूर आन्दोलनों के दौरान इनके अर्थवाद, स्वतःस्फूर्तता के प्रति अन्धभक्ति, मज़दूरवाद के अनगिनत उदाहरण सामने आये थे जिसके कारण इन तमाम आन्दोलनों को काफ़ी हानि भी पहुँची थी। यही नहीं, इस प्रकार का "वामपन्थी" अर्थवाद क्रान्ति के बाद समाजवादी संक्रमण के दौरान भी आर्थिक कारकों को राजनीति पर प्रधानता देने के चलते पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को नकारता है और "उत्पादकों के उत्पादन के साधनों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण" की बात करता है जो कि क़तई मार्क्सवाद-विरोधी सैद्धान्तिकीकरण है। रूस के सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में क्रीडो मतावलम्बी, राबोचाया द्येलो मतावलम्बी व क्रान्ति के बाद स्मिर्नोव, ओसिंस्की, बुखारिन व प्रियोब्रेज़ेन्स्की और साथ ही श्ल्याप्निकोव और कोलोन्ताई का 'वर्कर्स अपोज़ीशन' इसी "वामपन्थी" अर्थवाद का शिकार था।

अपने इन दोनों ही रूपों या संस्करणों में अर्थवाद एक बुर्जुआ भटकाव या विकृति के तौर पर दुनिया के हर देश के मज़दूर आन्दोलन में बार-बार प्रकट होता रहा है। रूस में भी क्रान्ति के पहले और क्रान्ति के बाद अर्थवाद का भटकाव दोनों ही अवतारों में बार-बार प्रकट होता रहा। क्रान्ति के पहले पूँजीवाद इसे अपनी गति से स्वतः पैदा करता है और क्रान्ति के बाद यानी कि समाजवादी संक्रमण की पूरी अवधि के दौरान भी अर्थवाद का भटकाव बार-बार प्रकट होता है जिसका कारण समाज में मौजूद वर्ग संघर्ष है जो कि समाजवादी संक्रमण के ऐतिहासिक दौर में रूप बदलकर लेकिन और भी अधिक सघनता और तीव्रता के साथ बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच जारी रहता है। बुर्जुआ वर्ग की विचारधारा अर्थवाद के भटकाव के रूप में ही मज़दूर वर्ग की पार्टी और राज्यसत्ता में प्रवेश करती है। इसलिए भी मज़दूर वर्ग को इस प्रवृत्ति के विषय में अपनी नज़र साफ़ कर लेनी चाहिए।

यह मज़दूर वर्ग के शिक्षक लेनिन ही थे जिन्होंने बताया था कि मज़दूर वर्ग भी क्रान्तिकारी सर्वहारा राजनीति के अभाव में पूँजीवादी विचारों द्वारा प्रभावित रहता है या लेनिन के शब्दों को ही इस्तेमाल करते हुए कहें तो "मज़दूर वर्ग घुटनों तक टटपुँजिया राजनीतिक चेतना के दलदल में धँसा हुआ होता है।" यानी मज़दूरों की स्वतःस्फूर्त चेतना ही सर्वहारा चेतना नहीं होती है, जैसा कि हम पहले भी इंगित कर चुके हैं। बहरहाल, इस चर्चा के बाद यहाँ अब यह जानना भी अर्थपूर्ण और प्रासंगिक होगा कि विश्व सर्वहारा के महान शिक्षकों और नेताओं में से एक, लेनिन ने, किस प्रकार इस विजातीय प्रवृत्ति के विरुद्ध अनवरत विचारधारात्मक-राजनीतिक संघर्ष चलाया और मार्क्सवाद की विचारधारात्मक-सैद्धान्तिक अन्तर्वस्तु को समृद्ध किया और रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन को सही राजनीतिक लाइन पर संगठित करने में महती भूमिका अदा की। इस इतिहास-दृष्टि से लैस मज़दूर वर्ग ही वर्तमान और भविष्य में इन ग़ैर-मार्क्सवादी प्रवृत्तियों और रुझानों के विरुद्ध मोर्चा खोल सकता है।

अर्थवाद के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष का ऐतिहासिक-क्रम

दरअसल रूस में बोल्शेविक पार्टी यानी कि रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया अर्थवाद जैसी ग़ैर-सर्वहारा वर्गीय प्रवृत्ति के ख़िलाफ़ संघर्ष चलाकर ही फलीभूत हो पायी थी। अर्थवाद सामाजिक जनवादी पार्टी (उस दौर में कम्युनिस्ट पार्टियों को सामाजिक जनवादी पार्टियाँ कहने का चलन था) के भीतर ही एक शक्तिशाली रुझान के रूप में पैदा हुआ था। रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में अर्थवाद का प्रतिनिधित्व करने वाली ताक़तों के मुखपत्र राबोचाया मिस्ल (Workers' Thought / श्रमिक विचार) नामक अख़बार और राबोचाया द्येलो (Workers' Cause / श्रमिक निमित्त) नामक पत्रिका थे। लेनिन ने इनमें व्यक्त विचारों को "अन्तरराष्ट्रीय अवसरवाद की रूसी क़िस्म" की संज्ञा दी थी। 1899 में 'क्रीडो' नाम से अर्थवादियों द्वारा एक घोषणापत्र जारी किया गया था जिसे ई.डी. कुस्कोवा द्वारा तैयार किया गया था। कुस्कोवा एक प्रमुख अर्थवादी और "क्रीडो" मतावलम्बी सिद्धान्तकार थीं जिनके निम्नलिखित शब्दों को यहाँ देना हम प्रासंगिक इसलिए समझते है क्योंकि ऐसी ही बातें करते हुए भारत में भी कई अर्थवादी-संशोधनवादी महानुभाव अक्सर बरामद होते हैं। कुस्कोवा कहती हैं :

"एक स्वतंत्र मज़दूरों की राजनीतिक पार्टी के बारे में चर्चा विदेशी कार्यभारों और विदेशी उपलब्धियों को हमारी ज़मीन पर स्थानान्तरित करने के परिणाम के अलावा और कुछ नहीं है...ऐतिहासिक स्थितियों का एक पूरा समुच्चय हमें पश्चिमी मार्क्सवादी होने से रोकता है और हमसे एक अलग मार्क्सवाद की माँग करता है जो कि रूसी स्थितियों में उपयुक्त और आवश्यक है। हरेक रूसी नागरिक में राजनीतिक भावना और समझ की कमी साफ़ तौर पर राजनीति के बारे में चर्चाओं से या अनुपस्थित ताक़तों के नाम अपीलों के ज़रिए पूरी नहीं हो सकती। यह राजनीतिक बोध केवल उस प्रशिक्षण के ज़रिए हासिल किया जा सकता है (चाहे यह कितना भी ग़ैर-मार्क्सवादी क्यों न हो) जो कि रूसी यथार्थ हमारे सामने पेश कर रहा है... रूसी मार्क्सवादी के सामने केवल एक ही रास्ता है : सर्वहारा वर्ग के आर्थिक संघर्ष का समर्थन करना और उदार विपक्ष की गतिविधियों में हिस्सेदारी करना।"

लेनिन ने इस अर्थवादी तर्क का उत्तर 1899 में प्रकाशित अपने लेख 'रूसी सामाजिक-जनवादियों द्वारा प्रतिरोध' में दिया। लेनिन उस वक़्त राजनीतिक कारणों से निर्वासन में थे। लेकिन जैसे ही लेनिन ने अर्थवादियों का यह घोषणापत्र पढ़ा तो इसमें प्रस्तुत कार्यक्रम की तीखी आलोचना प्रस्तुत की। लेनिन ने स्पष्ट तौर पर बतलाया कि आर्थिक और राजनीतिक संघर्षों के बीच कोई चीन की दीवार नहीं होती है, विज्ञान जोकि मार्क्सवादी विचारधारा है, देश-काल के हिसाब से बदल नहीं जाता है, और इसके साथ ही क्रान्तिकारी सर्वहारा के मार्गदर्शक सिद्धान्त के तौर पर मार्क्सवाद की अहमियत को भी लेनिन द्वारा रेखांकित किया गया। इस प्रकार लेनिन ने अर्थवाद पर 1899 से ही तीखा हमला बोलना शुरू कर दिया था। अर्थवाद की विचारधारात्मक-राजनीतिक जड़ों पर सबसे मज़बूत हमला लेनिन ने 1899 से लेकर 1903 तक की अपनी अनेक रचनाओं में किया जिसका चरमोत्कर्ष 1902 की रचना 'क्या करें' थी।

1901 में प्रकाशित 'अर्थवाद के पैरोकारों से एक बातचीत' में लेनिन अर्थवाद की प्रवृत्ति को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, जोकि इस विषय पर सबसे सटीक टिप्पणी है और अर्थवाद के मर्म और अन्तर्य को बख़ूबी पकड़ती है। लेनिन लिखते हैं :

"इसका अर्थ उस अलग रुझान का अस्तित्व में आना था जिसे आम तौर पर अर्थवाद (शब्द के व्यापक अर्थ में) कहा जाता है जिसका विशेष गुण पिछड़ेपन की, यानी जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, जनसाधारण के स्वतःस्फूर्त उभार से सचेत नेताओं के पिछड़ जाने की नासमझी में, यहाँ तक कि इसकी हिमायत में निहित है। इस प्रवृत्ति की अभिलाक्षणिकताएँ हैं : उसूलों के मामले में – मार्क्सवाद को विकृत करना और आधुनिक "आलोचना" अवसरवाद के इस नवीनतम संस्करण के सामने बेबसी ज़ाहिर करना; राजनीति के मामले में – राजनीतिक आन्दोलन तथा राजनीतिक संघर्ष को सीमित करने अथवा उन्हें तुच्छ गतिविधियों में परिवर्तित करने की इच्छा अथवा इस बात की नासमझी कि आम जनवादी आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथों में न लेने पर सामाजिक-जनवादी राजतंत्र का तख़्ता नहीं उलट सकते; कार्यनीति के मामले में – घोर डाँवाडोलपन ('राबोचाया द्येलो' पिछले वसन्त में आतंक के "नये" प्रश्न के सामने हैरान रह गया था और सिर्फ़ छह महीने बाद जाकर, काफ़ी दोलन करने और हमेशा की तरह आन्दोलन की दुम के साथ बँधकर घिसटते रहने के बाद उसने एक बहुत ही असपष्ट प्रस्ताव में आतंकवाद के विरुद्ध अपना विचार व्यक्त किया); संगठन के मामले में – इस बात को समझने की असमर्थता कि आन्दोलन का जनव्यापी स्वरूप क्रान्तिकारियों का एक ऐसा मज़बूत और केन्द्रीयकृत संगठन स्थापित करने के हमारे इस दायित्व को घटाता नहीं बल्कि इसके विपरीत इसे बढ़ाता है, जो तैयारी सम्बन्धी संघर्ष, हरेक अप्रत्याशित विस्फोट और, अन्ततः, अन्तिम निर्णायक धावे का नेतृत्व करने में सक्षम हो।"

कुलमिलाकर यह कि रूस में अर्थवादी सैद्धान्तिक तौर पर मज़दूर वर्ग की आकांक्षाओं और संघर्षों को ज़्यादा मज़दूरी और बेहतर कार्यस्थितियों के लिए आर्थिक संघर्षों तक सीमित कर देते थे और मानते थे कि आगे का राजनीतिक संघर्ष उदार बुर्जुआ वर्ग का कार्य है। वे मज़दूर वर्ग के हिरावल के तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका को भी नकारते थे और मानते थे कि पार्टी को महज़ आन्दोलन की स्वतःस्फूर्त प्रक्रिया के पीछे चलना चाहिए और अहम घटनाओं को केवल दर्ज करना चाहिए। मज़दूर आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तता की पूजा और उसके अधीनस्थ रहने के चलते अर्थवादी क्रान्तिकारी सिद्धान्त, विचारधारा और वर्ग-सचेतनता की अहमियत को ख़ारिज करते थे और दावा करते थे कि समाजवादी विचारधारा अपने आप स्वतःस्फूर्त आन्दोलन के भीतर से पैदा हो जायेगी। चूँकि अर्थवादी सर्वहारा वर्गीय विचारों को मज़दूर वर्ग के बीच में फैलाने के हिमायती नहीं थे, लेनिन ने बताया कि दरअसल वे मज़दूरों के बीच बुर्जुआ मूल्यों की निरन्तरता को बनाये रखने का ही पाठ पढ़ा रहे थे और मज़दूर आन्दोलन को बुर्जुआ विचारधारा का पिछलग्गू बना रहे हैं। लेनिन के मार्गदर्शन में निकलने वाले मज़दूर अख़बार 'इस्क्रा' (अंक संख्या 51 तक) ने अर्थवादियों के विरुद्ध चले विचारधारात्मक संघर्ष में महती भूमिका अदा की। मार्च 1902 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'क्या करें' के ज़रिए लेनिन ने अर्थवादियों को पूरी तरह से विचारधारात्मक शिकस्त दी थी जिस पर हम अगले अंक में चर्चा करेंगे।

अर्थवादियों के लिए वर्गों के बीच का संघर्ष आर्थिक कारकों में होने वाले परिवर्तन का सीधा और प्रत्यक्ष परिणाम होता था। कुल मिलाकर, उनका नतीजा यह था कि जब आर्थिक परिस्थितियाँ उपयुक्त और अनुकूल हो जाती हैं तो सामाजिक परिवर्तन स्वयं ही हो जाते हैं। यानी कि मज़दूर वर्ग को सचेतन तौर पर संगठित करने और इस काम के लिए लौह अनुशासन में तपी-ढली, अधिकतम सम्भव गुप्त और संगठित हिरावल पार्टी की कोई ज़रूरत नहीं है। मज़दूर वर्ग को महज़ अपने आर्थिक अधिकारों के लिए ट्रेड यूनियनों के तहत संघर्ष करना चाहिए। इसके साथ ही अर्थवादियों का यह भी मानना था कि मज़दूरों की राजनीतिक मुद्दों में कोई दिलचस्पी नहीं होती और राजनीति पार्टी के बौद्धिक नेताओं का काम है। मज़दूरों की रुचि तो केवल उनके आर्थिक हितों की लड़ाई में होती है, यानी कि उन संघर्षों में जो ट्रेड यूनियन के ज़रिए लड़े जाते हैं। **इस प्रकार अर्थवाद द्वारा मज़दूर वर्ग की समूची गतिविधि को उसकी आर्थिक ट्रेड यूनियन गतिविधियों तक सीमित कर दिया जाता है, यानी कि मालिकों से बेहतर मज़दूरी और कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष तक।** ज़ाहिर है कि यह संघर्ष मौजूदा व्यवस्था के ढाँचे के भीतर ही लड़ा जा सकता है और इसके लिए व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। रूसी सामाजिक-जनवादी आन्दोलन में मौजूद अर्थवाद की धारा सैद्धान्तिक तौर पर क्रान्ति की अनिवार्यता को हालाँकि ख़ारिज नहीं करती थी, लेकिन चूँकि रूस उस वक़्त अभी जनवादी क्रान्ति की मंज़िल में था इसलिए पूँजीवादी जनवादी सुधारों का कार्यक्रम ही इसके अनुसार एकमात्र सही राजनीतिक कार्यक्रम था जिसके लिए कि उदार पूँजीपति वर्ग का सहयोग किया जाना चाहिए था। साथ ही, मज़दूर वर्ग स्वयं पूँजीपति वर्ग से बेहतर वेतन और कार्यस्थितियों की माँगों के अलावा किसी अन्य माँग के लिए संघर्ष नहीं कर सकता। इन अर्थवादियों के अनुसार पूँजीवादी जनवाद और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के मुकम्मिल तौर पर स्थापित होने के बाद पूँजीवाद अपनी नैसर्गिक गति से मज़दूरों के आर्थिक संघर्षों को इस हद तक सघन और जुझारू बनाता जायेगा कि यह संघर्ष स्वतःस्फूर्त ढंग से राजनीतिक संघर्ष में तब्दील हो जायेगा।

इस लेख के अगले भाग में हम लेनिन द्वारा अर्थवाद के ख़िलाफ़ लिखी गयी सबसे महत्वपूर्ण रचना 'क्या करें' में प्रस्तुत विचारों को रखेंगे और जानेंगे कि किस प्रकार उन्होंने मज़दूर आन्दोलन में मौजूद इस विचारधारात्मक प्रदूषण के विरुद्ध न सिर्फ़ संघर्ष चलाया था बल्कि इसी प्रक्रिया में मज़दूर वर्ग की हिरावल पार्टी का लेनिनवादी सिद्धान्त भी पेश किया था।

(अगले अंक में जारी)

जाति आधारित जनगणना : शासक वर्ग का जनता को जाति के आधार पर बाँटने का नया हथियार

● वारुणी

बीते दिनों बिहार में जातिगत जनगणना का मुद्दा तूल पकड़ा है। बिहार में जदयू-राजद की सरकार में जातिगत जनगणना की शुरुआत हो चुकी है। जनवरी महीने की 21 तारीख़ को इसके पहले चरण की समाप्ति हुई है और सरकार द्वारा यह दावा किया जा रहा है कि मई के आख़िरी तारीख़ तक यह जनगणना समाप्त हो जाएगी।

आपको बताते चलें कि इससे पहले भी 2021 में राजद, जदयू, सपा, बसपा जैसी जाति-आधारित राजनीति करने वाली पार्टियाँ जाति जनगणना की माँग को लेकर मोदी सरकार के समक्ष दबाव बना रही थीं। ज्ञात हो कि जनगणना देश में हर 10 साल पर करवायी जाती है। जनगणना के आधार पर ही सरकार नये आँकड़ों के हिसाब से नयी नीतियाँ तैयार करती है। 2021 में जनगणना होनी थी जो कि कोरोना महामारी की वजह से नहीं हो सकी। माना जा रहा है कि सरकार अब सीधे 2024 में लोकसभा चुनावों के बाद ही जनगणना करवायेगी।

हर जनगणना में अनुसूचित जाति और जनजाति के आँकड़े जुटाये जाते रहे हैं परन्तु अन्य जाति समूहों की जानकारी इकट्ठा नहीं की जाती थी। 2021 में कई पार्टियों द्वारा यह माँग उठायी गयी कि हर जाति समूह की जानकारी सरकार के पास होनी चाहिए। अलग-अलग जाति समूहों की आबादी कितनी है और ख़ास तौर पर ओबीसी समुदाय की आबादी और उनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति क्या है, यह जानकारी ज़रूरी है ताकि उस अनुसार 'सामाजिक न्याय' हो सके। जाति आधारित जनगणना आखिरी बार औपनिवेशिक भारत में 1931 में हुई थी। उसी पर आधारित डेटा का उपयोग आज भी किया जाता है। इसी के आधार पर मण्डल कमीशन ने कुल आबादी में ओबीसी आबादी की 52 फ़ीसदी हिस्सेदारी बतायी थी। इसी आधार पर मण्डल कमीशन की सिफ़ारिशों को 1990 में लागू किया गया और नौकरियों में ओबीसी जातियों को 27% आरक्षण दिया गया। 2010 में भी जाति जनगणना का मुद्दा उठाया गया था जो कि लालू यादव, शरद यादव और मुलायम सिंह जैसे ओबीसी जातियों की राजनीति करने वाली पार्टियों के नेता ने उठाया था। तब केन्द्र में कांग्रेस के नेतृत्व में गठबन्धन की सरकार को इसे मानने पर मजबूर होना पड़ा और 2011 में एस.ई.सी.सी. (सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना) के तहत यह जनगणना करायी गयी और जाति आधारित डेटा जुटाया गया। बाद में इसे सामाजिक न्याय मंत्रालय को सौंप दिया गया परन्तु यह डेटा कभी सार्वजनिक नहीं किया गया। इसके पीछे ये तर्क दिये गये कि इस सर्वे में कई त्रुटियां मौजूद थी। इस प्रकार सरकार के पास नवीनतम जाति आधारित कोई डेटा मौजूद नहीं है। ऐसे में मण्डल की राजनीति करने वाली पार्टियों द्वारा 2021 से फिर यह मुद्दा उछाला जा रहा है। केन्द्र की सरकार इसे राष्ट्रीय स्तर पर लागू करने से इन्कार कर देती है तो बिहार में सत्तासीन जदयू-राजद की सरकार राज्य के स्तर पर जातिगत जनगणना करवाने का फ़ैसला लेती है।

जातिगत जनगणना के लिए लड़ने वाली तमाम राजनीतिक पार्टियाँ विभिन्न समुदायों के लिए आरक्षण के विस्तार को सही ठहराने के लिए जाति आधारित डेटा की आवश्यकता का हवाला देती हैं। उनका यह तर्क है कि जाति प्राप्त विशेषाधिकार को ख़त्म करने के लिए पहले उन जातियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भी पता होना चाहिए और इसलिए जाति जनगणना की ज़रूरत है। कई अन्य संगठन भी इस बात का हवाला देकर जाति जनगणना को सही ठहरा रहे हैं कि इससे सभी जातियों की आबादी का और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति का पता चलेगा जिससे कि जाति-आधारित आरक्षण देना आसान हो जायेगा। उनके अनुसार 1931 के डेटा पर निर्भर रहकर आरक्षण की प्रक्रिया को जारी रखना न्यायपूर्ण नहीं होगा।

लेकिन हमें यह समझना चाहिए कि मण्डल की राजनीति करने वाली तमाम पार्टियाँ जाति जनगणना का इस्तेमाल अपनी जातिगत अस्मिता की राजनीति को हवा देने के लिए कर रही हैं। इसका इस्तेमाल राजद, जदयू जैसी पार्टियाँ अपने वोट बैंक को बढ़ाने और उसका विस्तार करने के लिए कर रही हैं। जातिगत जनगणना कराकर वे दोबारा से आरक्षण के मुद्दे को उछालना चाहती हैं ताकि आने वाले लोकसभा चुनावों में वे इस मुद्दे पर वोट बटोर सकें। ज्ञात हो कि 1989-90 में मण्डल कमीशन की सिफ़ारिशों के लागू होने के बाद इसी राजनीति पर लालू यादव, मुलायम सिंह यादव, रामविलास पासवान जैसे नेताओं ने तमाम राज्यों में अपना क्षेत्रीय आधार बनाया था। उसी 1989-90 के दौर में भाजपा ने अयोध्या में राम मन्दिर के लिए आन्दोलन छेड़ा था और कमण्डल की राजनीति की शुरुआत की थी और इसी राजनीति पर वह अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंक सकी।

आज भाजपा भी ऐसी जातिगत जनगणना के पक्ष में नहीं है क्योंकि उसे इस बात का डर है कि जिस हिन्दुत्व की राजनीति को लेकर वह सभी जाति समुदायों को हिन्दू धर्म की छत्रछाया में एकजुट करने का प्रयास कर रही है और मुस्लिम समुदाय को 'अन्य' बनाने की कोशिश में लगी हुई है, ऐसे में जाति-आधारित जनगणना उसकी इस राजनीति को कमज़ोर बना सकती है। भाजपा जातिगत जनगणना कराकर अपनी चुनावी जीत की सम्भावनाओं को जोखिम में नहीं डालना चाहती। हालाँकि 2021 में उठे सवाल पर भाजपा ने जाति-आधारित जनगणना नहीं कराने के पीछे कुछ प्रशासनिक और तकनीकी दिक्कतों को कारण बताया था। इससे साफ़ है कि भाजपा सीधे तौर पर जाति आधारित जनगणना के ख़िलाफ़ मुँह नहीं खोल रही है। कारण यह कि भाजपा ओबीसी समुदाय के विभिन्न तबकों में अपने आधार का विस्तार करने के तरीक़े खोज रही है। 2022 में यूपी विधानसभा चुनाव में इसकी झलकियाँ देखने को मिलीं जहाँ मोदी ख़ुद को पिछड़े समुदाय का बताते नहीं थकते थे, वहीं भाजपा नीट की परीक्षा में ओबीसी आरक्षण लागू करवाने के लिए ख़ुद की पीठ थपथपा रही थी। ओबीसी में ग़ैर-यादव आबादी के एक बड़े हिस्से का वोट भाजपा को गया था। भाजपा पिछड़ी जातियों के बीच भी अपने वोट बैंक के विस्तार के लिए सारे दरवाजे खोलकर रखना चाहती है और इसलिए सीधे तौर पर वह ख़ुद को जाति जनगणना के विरोध में खड़ा नहीं दिखाना चाहती। बिहार में भी जाति जनगणना का फ़ैसला लेते वक़्त भाजपा इसके पक्ष में खड़ी थी। यहाँ तक कि 2018 में राजनाथ सिंह के नेतृत्व में जातिगत जनगणना कराने पर सहमति भी जतायी गयी थी। लेकिन केन्द्र में इसे लागू करने से अभी भाजपा बचना चाह रही है। कारण यह है कि वह अपनी हिन्दुत्व की राजनीति को हाशिए पर नहीं रखना चाहती। 2014 के बाद से भाजपा बहुसंख्यक हिन्दू आबादी का ध्रुवीकरण करने में काफ़ी हद तक कामयाब हुई है। "सामाजिक न्याय" व अस्मिता की राजनीति ने भाजपा की हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद की राजनीति को खाद-पानी देने का ही काम किया है। भाजपा व संघ के अन्य अनुषंगी संगठन जाति की पहचान से ऊपर उठकर हिन्दू के रूप में पहचानने का प्रचार करते हैं और वे मुस्लिम समुदाय को "अन्य" के तौर पर स्थापित करते हैं।

हमें इस बात की साफ़ समझदारी होनी चाहिए कि चाहे वह हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी ताकतें हो जो हिन्दू पहचान की राजनीति कर रही हैं और लोगों को धर्म के नाम पर बाँटकर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंक रही हैं या चाहे वह जाति के आधार पर राजनीति करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ हों, ये दोनों जनता को आपस में अलग-अलग पहचान के नाम पर बाँटने का काम करते आये हैं और इसका फ़ायदा उठाते आये हैं। भाजपा और संघ का दलित विरोधी चेहरा बार-बार सामने आता रहा है और 2014 से भाजपा की पूँजीपरस्त नीतियों और जनविरोधी नीतियों को साफ़ साफ़ जनता अनुभव कर चुकी है। दूसरी तरफ़ मण्डल की राजनीति करने वाली तमाम पार्टियों की सरकारें भी केन्द्र की सत्ता में भागीदार रही हैं और राज्यों में सत्तासीन रही हैं और उन्होंने भी आम मेहनतकश जनता को शिक्षा-रोज़गार जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित ही रखा है। इनके शासन में भी जातिगत उत्पीड़न और नरसंहार की तमाम घटनाएँ घटती रही हैं। इन्हीं के कार्यकाल में बिहार में बथानी टोला और लक्ष्मणपुर बाथे जैसे नरसंहार होते रहे हैं। जहाँ तक इनके द्वारा पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय और अधिकार दिलाने की बात है, तो सच्चाई यह है कि उन जातियों से भी एक बहुत छोटा तबका ही आगे बढ़ पता है और आरक्षण का फ़ायदा उठा पता है। वैसे तो पिछड़ी जातियों यानी ओबीसी की हिस्सेदारी अभी भी शिक्षा और सरकारी नौकरियों में अपनी आबादी के अनुपात में काफ़ी कम है लेकिन उनके बीच ऐसी कई जातियाँ हैं जिनकी एक ठीकठाक आबादी धनी व उच्च-मध्यम किसानों की है। ये ग्रामीण पूँजीपति वर्ग के अंग हैं और गाँव में आज ये लोग खेतिहर मज़दूरों का शोषण करने में सबसे आगे हैं। खेती में बड़ी पूँजी के घुसने से ओबीसी जातियों के बीच भी असुरक्षा का माहौल तैयार हुआ है और वे भी अब सरकारी नौकरी व शिक्षा में हिस्सेदारी के लिए परेशान हैं। लेकिन हमें यह समझना होगा कि आज के रोज़गारविहीन विकास के दौर में जहाँ सरकारें खुले तौर पर पूँजीपतियों की सेवा में लगी हैं, लगातार सरकारी नौकरियों को ख़त्म किया जा रहा है और शिक्षा को एक बाज़ारू माल में तब्दील किया जा रहा है, ऐसे में किसी भी जाति की बहुसंख्यक आबादी सस्ती शिक्षा और रोजगार से वंचित ही रहेगी। और आर्थिक संकट के एक ऐसे दौर में जब बेरोज़गारी अपने चरम पर है, तमाम पार्टियाँ आरक्षण जैसे मुद्दे उछालने का काम करेंगी। जाति जनगणना का इस्तेमाल भी इसी रूप में किया जाएगा। शिक्षा और रोज़गार में सीटों के आरक्षण का मुद्दा उछाला जायेगा ताकि आम मेहनतकश आबादी को जाति के नाम पर बाँटा जा सके और शीर्ष में बैठी पार्टियाँ इसपर अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंक सकें। हमें सोचना चाहिए कि क्यों ये तमाम वोटों के व्यापारी और जातियों के रहनुमा बनने वाले नेता असल में बेरोज़गारी के मुद्दे पर कभी कोई विरोध करते नज़र नहीं आते हैं? क्यों ये लोग निःशुल्क और समान शिक्षा के मुद्दे को नहीं उठाते बल्कि इन क्षेत्रों में आरक्षण के मुद्दे तक ही सीमित रहते हैं! आरक्षण (सरकारी नौकरियों व शिक्षा में) जोकि आजादी के वक़्त एक जनवादी अधिकार के रूप में प्रासंगिकता रखता था, अब वह मात्र एक हथियार बन चुका है जनता को आपस में लड़वाने के लिए।

आज हमें समझने की ज़रूरत है कि दलितों के लिए भी कई दशकों से शिक्षा और रोज़गार के क्षेत्र में लागू आरक्षण से मात्र इतना फ़र्क़ पड़ा है कि उनके बीच से एक अत्यन्त छोटा, सुविधाजीवी मध्य वर्ग पैदा हुआ है जो गाँवों और शहरों में निकृष्टतम कोटि के उजरती ग़ुलामों का जीवन बिताने वाले दलितों से अपने को पूरी तरह काट चुका है। और आरक्षण का विरोध करने वालों को भी यह समझ लेना चाहिए कि यदि 100 प्रतिशत आरक्षण ख़त्म भी कर दिया जाय, तो ग़ैर-दलित जातियों के बेहद-बेहद छोटे हिस्से को ही सरकारी नौकरी या शिक्षा हासिल हो सकेगी क्योंकि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के कारण सरकारी नौकरी व शिक्षा के अवसर ही बेहद कम हैं, जो स्वयं पूँजीवाद-जनित समस्या है। इसलिए जब मौजूदा मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था नौकरी दे ही नहीं सकती है, तो फिर आरक्षण के होने या न होने पर सिर-फुटव्वल करना किसी ऐसी चीज़ में छोटा-सा हिस्सा पाने के लिए लड़ना है जो कि वास्तव में है ही नहीं! इसलिए यह एक ग़ैर-मुद्दा है और इसे मुद्दा बनाना केवल जनता को जाति की पहचान या धर्म की पहचान पर बाँटना है ताकि अलग-अलग पूँजीवादी चुनावी पार्टियाँ इस पर अपनी गोटियाँ लाल कर सकें। आज ज़रूरत है कि हम ख़ुद को वर्ग के आधार पर संगठित करें और 'सभी को समान और निःशुल्क शिक्षा व रोजगार के समान अवसर' के नारे के इर्द गिर्द संगठित और गोलबंद होकर सत्ता में बैठे हुक्मरानों पर सवाल उठायें। भारत में जब तक पूँजीवाद रहेगा, तब तक उजरती ग़ुलामी रहेगी और दलितों का (और पिछड़ों का भी) बहुलांश तब तक इन्हीं उजरती ग़ुलामों की क़तारों में शामिल रहेगा। जातिगत आधार पर क़ायम उत्पीड़न का आधार पहले सामन्तवाद था और आज पूँजीवाद है। इसे समाप्त करने के लिए पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। परन्तु व्यवस्था परिवर्तन की यह मुहिम उस आमूलगामी सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के बिना अधूरा होगी और कभी सफल न हो सकेगी जो जातिगत विभेद ख़त्म करने को अपने एजेण्डा पर प्रमुखता के साथ स्थान नहीं देगा।

विदा कॉमरेड गणेशराम चौधरी, लाल सलाम !

कॉमरेड शंकर गुहा नियोगी के नेतृत्व में संगठित छत्तीसगढ़ के मज़दूर आन्दोलन के एक प्रमुख स्तम्भ कॉमरेड गणेशराम चौधरी का पिछली 29 जनवरी को निधन हो गया। वे छत्तीसगढ़ माइन्स श्रमिक संघ के अध्यक्ष और छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा महासचिव रहे थे।

उनका जन्म 21 जुलाई 1954 को जमशेदपुर के भुइयांडीह में हुआ था। वे चार वर्ष के थे तभी उनके इनके माता - पिता इन्हें लेकर परिवार सहित 1959 में भुईयांडीह से कोकपुर और फिर कुछ वर्ष बाद काम की तलाश में दल्लीराजहरा आ गये। दल्लीराजहरा में गणेशराम जी ने सेठों के घर बेगारी की और जंगल से लकड़ी भी चुनकर बेची। फिर 1974 में वे मज़दूर के तौर पर भर्ती और चालीस वर्षों तक खदानों में काम करने के बाद रेजिंग मज़दूर के तौर पर झरनदल्ली खदान से सेवानिवृत्त हुए। लेकिन 40 वर्षों का यह समय मज़दूरों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए ही बीता।

1991 में शंकर गुहानियोगी की हत्या के बाद उन्होंने छत्तीसगढ़ माइंस श्रमिक संघ के अध्यक्ष की ज़िम्मेदारी सँभाली। अनेक हड़तालों, संघर्षों, रेल रोको सत्याग्रह आदि में अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर नेतृत्व किया। वे मितभाषी और शालीन थे लेकिन अपनी बात तार्किक और ठोस ढंग से रखते थे। मज़दूरों के सवालों पर संयुक्त मोर्चे में वैचारिक मतभेदों और व्यावहारिक अड़चनों के बावजूद विभिन्न श्रमिक संघों को एकजुट करके संघर्ष के मैदान में उतारने की सांगठनिक कुशलता भी उनमें थी और छिपे वर्गीय दुश्मनों को पहचानकर उनके मुखौटे नोचकर बेपर्द करने में भी वे नहीं हिचकिचाते थे।

कॉ. चौधरी के साथ 'मज़दूर बिगुल' के साथियों का सम्पर्क काफ़ी देर से हुआ लेकिन उसके बाद हमारे बीच निरन्तर नज़दीकी सम्पर्क बना रहा। मज़दूर आन्दोलन के सामने उपस्थित नयी चुनौतियों के सवाल पर अरविन्द स्मृति न्यास की ओर से 2010 में गोरखपुर में आयोजित संगोष्ठी में उन्होंने 'मज़दूर आन्दोलन की नयी दिशा: सम्भावनाएँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ' विषय पर एक महत्वपूर्ण पेपर पढ़ा प्रस्तुत किया था। इस पेपर में उन्होंने स्पष्ट कहा था, "इतिहास इस बात का गवाह है कि मज़दूर आन्दोलन दुनिया में कहीं भी, ठहराव को तोड़कर लम्बी छलाँग ले पाने में और नयी ऊँचाइयों को छू पाने में तभी सफल हुआ है, जब उसने अपने अन्दर की विजातीय प्रवृत्तियों से, तमाम ग़ैरसर्वहारा लाइनों से निर्मम, समझौताहीन संघर्ष किया है। जब ठहराव का दौर होता है और भटकावों का बोलबाला होता है तो मज़दूर आन्दोलन के भीतर हावी कठमुल्लावाद, बौद्धिक अवसरवाद,

अर्थवाद-संसदवाद, स्वयंस्फूर्ततावाद तथा "वामपन्थी" और दक्षिणपन्थी भटकावों की रंग-बिरंगी अभिव्यक्तियों के ख़िलाफ़ केवल वही लोग मोर्चा ले पाते हैं, जिनमें तोहमतों-गालियों-छींटाकशियों की परवाह किये बिना धारा के विरुद्ध तैरने का सच्चा लेनिनवादी साहस हो।"

पहली मई 2011 को दिल्ली में आयोजित 'मज़दूर माँगपत्रक अभियान' के पहले प्रदर्शन में भी वे अपने अनेक साथियों के साथ शामिल हुए थे।

वे नियोगीजी के दिये इस सबक को अक्सर दोहराते थे कि मज़दूरों को एक ओर अर्थवाद-संशोधनवाद और दूसरी ओर "वामपन्थी" दुस्साहसवादी भटकाव से लड़ना होगा। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि केवल ट्रेडयूनियन संघर्ष या आर्थिक संघर्षों से ही मज़दूर मुक्ति या समाजवाद की राह नहीं फूटती। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक संघर्ष ज़रूरी है और उसका नेतृत्व देने वाली एक हरावल क्रान्तिकारी पार्टी ज़रूरी है।

कुछ वर्ष पहले नियोगीजी के योग्य शिष्य होने का दावा करने वाले उनके ही कुछ "भुँइफोड़" नेताओं को "वामपन्थी" दुस्साहसवादी की राजनीति ने आकृष्ट किया था और षड्यन्त्रकारी तरीक़े से उन्होंने आन्दोलन में तोड़फोड़ भी की थी। दूसरी ओर, नियोगीजी की हत्या के बाद कुछ लोगों ने छत्तीसगढ़ मज़दूर आन्दोलन को रुटीनी जुझारू ट्रेडयूनियनवादी कवायदों तक सीमित करने की कोशिश की और उन्होंने भी संगठन में तोड़फोड़ की। आज वे विसर्जित होकर बुर्जुआ राजनीति के शरणागत हो चुके हैं। "वामपन्थी" दुस्साहसवाद की लाइन लेकर आने वाले हवाई नेता भी हवा में विलुप्त हो गये। कॉ. चौधरी ने इन दोनों ही धाराओं का साथ नहीं दिया और मुख्यतः नियोगीजी की विरासत को आगे बढ़ाने वाली सही लाइन के साथ बने रहे, भले ही अन्तिम वर्षों में वे अधिक सक्रिय नहीं रह गये थे।

दक्षिणपन्थी और "वामपन्थी" दोनों ही क़िस्म के अवसरवादी भटकावों से जूझती हुई नियोगी जी द्वारा प्रवर्तित छत्तीसगढ़ मज़दूर आन्दोलन की धारा आज नयी चुनौतियों के रूबरू खड़ी है। दूसरी ओर, नियोगीजी की मृत्यु के बाद के तीन दशकों में उत्पादन एवं विनिमय की प्रक्रिया, शोषण के तौर-तरीक़ों तथा पूँजी और श्रम के बीच के अन्तरविरोधों की प्रकृति में हुए बदलावों ने मज़दूर आन्दोलन के सामने कठिन चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। ऐसे में कॉ. गणेशराम चौधरी जैसे अनुभवी मज़दूर नेता का जाना छत्तीसगढ़ के मज़दूर आन्दोलन के लिए एक बड़ा आघात है।

हम 'मज़दूर बिगुल' की ओर से कॉ. गणेशराम चौधरी को तनी मुट्ठियों के साथ लाल सलाम पेश करते हैं और नये क्रान्तिकारी तेवर के साथ मज़दूर आन्दोलन को फिर से खड़ा करने के उनके सपनों को पूरा करने के लिए जूझने का संकल्प लेते हैं।

पहलवानों का प्रदर्शन और शुचिता–संस्कारों के भाजपाई ठेकेदारों की असलियत एक बार फिर से जनता के सामने !

● अन्नू राठी

पिछले दिनों देश के उत्कृष्ट कुश्ती खिलाड़ियों और ओलम्पिक-कॉमन वेल्थ-एशियाई पदक विजेताओं ने जन्तर-मन्तर पर सड़क पर उतरकर प्रदर्शन किया। इनमें बजरंग पुनिया, साक्षी मालिक, विनेश फोगाट, रवि दहिया, दीपक पुनिया, जितेन्द्र समेत देश के चोटी के कुश्ती खिलाड़ी शामिल थे। खिलाड़ियों ने कुश्ती संघ के अध्यक्ष व चीफ़ कोच से लेकर कई अधिकारियों पर संगीन आरोप लगाये। इनके सबसे ज़्यादा निशाने पर कुश्ती संघ का अध्यक्ष और कैसरगंज से भाजपाई सांसद बृजभूषन शरण सिंह रहा। बृजभूषण सिंह छह बार से भाजपा सांसद रहा है तथा भगवा ब्रिगेड के बाहुबली के तौर पर कुख्यात है। बृजभूषण पर पहले भी साम्प्रदायिकता, आगजनी, हिंसा और दंगे जैसे अपराधों में संलिप्तता के मामले दर्ज होते रहे हैं। पहलवानों ने कहा कि भारतीय कुश्ती महासंघ का अध्यक्ष न केवल महिला खिलाड़ियों का यौन उत्पीड़न करता है बल्कि अव्वल दर्जे का भ्रष्टाचारी भी है! बृजभूषण द्वारा खिलाड़ियों के साथ गाली-गलौच करने, मारपीट करने के वीडियो सोशल मीडिया पर भी देखे जा सकते हैं। इसके अलावा इनपर क्षेत्रवाद बरतने के आरोप भी लगे। कुश्ती महासंघ के अध्यक्ष के तानाशाहाना और भ्रष्टाचारी रवैये के ख़िलाफ़ अवाज़ उठाते हुए बजरंग पुनिया व साथी खिलाड़ियों ने कहा कि वे चाहते हैं कि फ़ेडरेशन में तत्काल बदलाव होना चाहिए। भारतीय कुश्ती महासंघ की ओर से पहलवानों को परेशान किया जा रहा है। कुश्ती महासंघ के अधिकारियों और ज़िम्मेदार लोगों को कुश्ती के खेल के बारे में कुछ भी अता-पता नहीं है। कुश्ती संघ में चारों ओर भ्रष्टाचार, शोषण, रिश्वतख़ोरी और भाई-भतीजावाद का आलम है। कुश्ती खिलाड़ियों का कहना है कि मामले का समाधान होने तक वे किसी भी प्रकार के कुश्ती मुक़ाबले में भागीदारी नहीं करेंगे। इसके साथ ही उन्होंने पुराने खिलाड़ियों, कोचों, खेल जगत की हस्तियों और जनता से कुश्ती खेल को बचाने की अपील की।

प्रदर्शन शुरू ही हुआ था कि खेल मंत्री अनुराग ठाकुर से लेकर बबिता फोगाट, योगेश्वर दत्त जैसे भाजपा के लग्गू-भग्गू सक्रिय हो गये। उधर खिलाड़ियों के ख़िलाफ़ कुत्साप्रचार की भाजपाई मशीनरी भी सक्रिय कर दी गयी। बृजभूषण ने उल्टा खिलाड़ियों पर ही आरोपों की बौछार शुरू कर दी। दूसरा दिन होते-होते बैठकों के दौर चलने लगे और तीसरे दिन कमेटी का शिगूफ़ा उछालकर मामले को ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया। लेकिन तीन ही दिन में कुश्ती संघ के अन्दर राजनीतिक हस्तक्षेप और खिलाड़ियों के लिए ख़राब अन्दरूनी हालात की काफ़ी-कुछ असलियत लोगों के सामने आ चुकी थी। मामले को शान्त हुए चन्द ही दिन हुए थे कि खिलाड़ियों ने कमेटी के प्रति असन्तोष जताना शुरू कर दिया। अब चाहे जो हो लेकिन कुश्ती खेल के लिए हालात की बेहतरी और बृजभूषण पर लगे आरोपों की निष्पक्ष जाँच की उम्मीद कम ही है।

संस्कार-सभ्यता-संस्कृति-शुचिता का ख़म ठोकने वाले संघी-भाजपाई नेताओं और इनके लग्गू-भग्गुओं पर इस तरह के आरोप लगना कोई नयी बात नहीं है। प्राचीन गौरव, राष्ट्रवाद और ईमानदारी की सबसे ज़्यादा माला वही फेरता है जो इनकी आड़ लेकर अपने घिनोने कर्मों को छिपाना चाहता है। वैसे तो तमाम चुनावबाज़ पार्टियों में दुष्ट क़िस्म के लोग पाये जा सकते हैं लेकिन इनमें भी सबसे ज़्यादा कीचड़ में लिथड़े हुए ये तथाकथित संस्कारी ही पाये जाते हैं। विकट परिस्थितियों के बावजूद खिलाड़ी जब पदक जीतकर लाते हैं तो तमाम नेता उनके साथ फ़ोटो खिंचाने में तो आगे रहते हैं लेकिन खेल की तैयारी और माहौल को दुरुस्त करने में किसी का भी ध्यान नहीं है। अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ जब हरियाणा भाजपा के खेल मंत्री सन्दीप सिंह के ख़िलाफ़ यौन हिंसा का आरोप लगाया गया था। इस मामले की जाँच करने की बजाय पीड़िता को ही तरह-तरह से डराया-धमकाया व प्रताड़ित किया जा रहा है। ख़ुद हरियाणा के मुख्यमंत्री महिला कोच के आरोपों पर अनर्गल होने का ठप्पा लगा रहे हैं। हरियाणा में कुश्ती संघ का उपाध्यक्ष पद एक हिस्ट्रीशीटर बदमाश और भाजपाई लठैत को दिया गया है। ज़ाहिर-सी बात है कि ऐसे माहौल में कैसे कोई खिलाड़ी अपना सौ फ़ीसदी अपने खेल को दे सकता है!

ज़ाहिरा तौर पर खिलाड़ियों की माँगें जायज़ हैं और हर इन्साफ़पसन्द नागरिक को इनका समर्थन करना चाहिए। खेल फ़ेडरेशनों के तमाम पदों पर नियुक्ति प्रक्रिया से राजनीतिक हस्तक्षेप को बिल्कुल समाप्त किया जाना चाहिए। लेकिन इसके साथ-साथ हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि निजी मुनाफ़े और शोषण पर आधारित व्यवस्था में खेलों के लिए स्वस्थ माहौल की चाहत भी आकाश कुसुम की अभिलाषा के समान है। कहना नहीं होगा कि कितनी ही खेल प्रतिभाएँ वक़्त से पहले ही कुम्हला जाती हैं और कितनी ही अपराध की दुनिया की ओर धकेल दी जाती हैं। यह अनायास ही नहीं है कि दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश खेलों में अपने से 100 फ़ीसदी कम आबादी वाले देशों से भी पीछे है। जनचेतना के अभाव और सामाजिक ढाँचे में जनवादी माहौल की कमी के चलते नेताओं-खेल के दलालों की तो चाँदी है लेकिन भारत में खेलों के प्रति माहौल बद से बदतर है।

धनपशुओं के जमावड़े के बीच पेश हुई ऑक्सफ़ैम की नयी रिपोर्ट

अमीर-ग़रीब की बढ़ती खाई पर अमीरों की चिन्ता का राज़ क्या है?

● आनन्द

हर साल जनवरी के महीने में दुनियाभर के तमाम धनपशु पूँजीपति अपने-अपने प्राइवेट जेट से स्विट्ज़रलैण्ड के दावोस शहर में एक आलीशान स्की रिसॉर्ट में 'वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम' नामक जमावड़े में पहुँचते हैं। वहाँ उनकी ख़ुशामद करने के लिए तमाम देशों के नेता-मंत्री, अर्थशास्त्री और पत्रकार मौजूद रहते हैं। इस फ़ोरम का मक़सद विश्व पूँजीवाद की हालत और आने वाले दिनों की चुनौतियों को लेकर माथापच्ची करना होता है। इस फ़ोरम पर ऑक्सफ़ैम नामक संस्था जो पूँजीपतियों के ही टुकड़ों पर पलती है, आर्थिक असमानता पर अपनी एक रिपोर्ट प्रस्तुत करती है, जिसमें बढ़ती असमानता के आँकड़े दिये जाते हैं और उसके ख़तरों के बारे में पूँजीपति वर्ग को चेताया जाता है। कोरोना महामारी की वजह से इस बार यह फ़ोरम दो साल के अन्तराल के बाद आयोजित हुआ। इस साल के फ़ोरम में पूँजीपतियों के माथे पर शिकन दिखायी दी जिसके कई कारण थे।

फ़ोरम में आये अधिकांश अर्थशास्त्रियों और कम्पनियों के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों ने 2023 में वैश्विक मन्दी की आशंका जतायी जिसका सीधा असर कम्पनियों के मुनाफ़े में कमी के रूप में सामने आयेगा। अपने विशालकाय मुनाफ़े के पहाड़ को और ऊँचा करने के लिए लार टपका रहे पूँजीपति अभी इस ख़बर से निराशा में डूबे ही हुए थे कि ऑक्सफ़ैम ने फ़ोरम में अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए उन्हें चेताया कि कोरोना महामारी के बाद दुनिया में आर्थिक असमानता इतनी बढ़ गयी है कि उसका नतीजा आने वाले दिनों में सामाजिक असन्तोष के रूप में दिख सकता है। फ्रांसीसी क्रान्ति के दौर के प्रबोधनकालीन दार्शनिक रूसो को उद्धृत करते हुए रिपोर्ट में कहा गया है अगर असमानता इसी रफ़्तार से बढ़ती रही तो एक दिन ग़रीबों के पास अमीरों को खाने के अलावा और कोई चारा नहीं बचेगा। स्पष्ट है कि ऑक्सफ़ैम की यह रिपोर्ट अपने आक़ाओं को पूँजीवाद के ख़िलाफ़ बढ़ते जनाक्रोश और भविष्य की जनक्रान्तियों के ख़तरे के प्रति आगाह कर रही है।

ऑक्सफ़ैम की भारत सम्बन्धी रिपोर्ट के कुछ आँकड़े

इस बार 'वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम' में ऑक्सफ़ैम ने अपनी मुख्य रिपोर्ट के अलावा भारत सम्बन्धी एक अन्य रिपोर्ट भी जारी की जिसमें भारत में बढ़ती असमानता से सम्बन्धित आँकड़े दिये गये हैं। इस रिपोर्ट में 'विश्व असमानता रिपोर्ट 2022' का हवाला देते हुए कहा गया है कि भारत दुनिया के सबसे असमान देशों में शामिल है जहाँ ग़रीबी के साथ ही साथ समृद्ध कुलीनों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। रिपोर्ट में बताया गया है कि **भारत में ग़रीबों की संख्या क़रीब 23 करोड़ है जो दुनिया में सबसे अधिक है। दूसरी ओर वर्ष 2020 में भारत में अरबपतियों की संख्या 102 थी जो 2022 में बढ़कर 166 तक पहुँच गयी।** यानी कोरोना काल में जब पूरे देश में हाहाकार मचा था तब चन्द थैलीशाहों की थैलियाँ और फूल गयीं। इस देश के प्रधानमंत्री के सबसे क़रीबी उद्योगपति और दोस्त गौतम अदानी की कुल सम्पत्ति महामारी के दौरान 8 गुना बढ़ गयी। महामारी के दौरान प्रधानमंत्री की आपदा में अवसर ढूँढ़ने की अपील को गम्भीरता से लेकर अकूत मुनाफ़ा कमाने वाले अरबपतियों में 7 हेल्थकेयर और फ़ार्मा सेक्टर के पूँजीपति थे जिनमें वैक्सीन बनाने वाली कम्पनी का मालिक साइरस पूनावाला भी शामिल है।

1981 में भारत के सबसे ऊपर के 10 प्रतिशत अमीरों की सम्पदा देश की कुल सम्पदा की 45 फ़ीसदी थी जो 2012 में बढ़कर 63 फ़ीसदी और 2022 में बढ़कर 80 फ़ीसदी से भी अधिक हो गयी। इस समय देश की कुल सम्पदा के 90 प्रतिशत पर सिर्फ़ 30 फ़ीसदी लोग कुण्डली मारे बैठे हैं। सबसे ऊपर के एक प्रतिशत धन्नासेठों के पास देश की 40 फ़ीसदी से भी अधिक सम्पदा इकट्ठी हो गयी है जबकि नीचे से 50 प्रतिशत लोगों के पास कुल सम्पदा का मात्र 3 फ़ीसदी है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि धनी वर्ग के पक्ष में खड़ी व्यवस्था में दलित, आदिवासी, मुस्लिम, महिलाएँ, अनौपचारिक क्षेत्र के मेहनतकश जैसे हाशिये के लोग सबसे अधिक कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं।

आक्सफ़ैम की रिपोर्ट में भारत की कराधान प्रणाली में निहित असमानता का प्रमुखता के साथ उल्लेख किया गया है। उसमें कहा गया है कि महामारी से पहले 2019 में केन्द्र सरकार ने कॉरपोरेट कर की स्लैब को 30 प्रतिशत से घटाकर 22 प्रतिशत (नयी इनकॉरपोरेटेड कम्पनियों के लिए 15 प्रतिशत) कर दिया था जिससे पहले साल मे कुल अर्जित कर में क़रीब 16 प्रतिशत की कमी आयी। पिछले दो वर्षों के दौरान इस कराधान प्रणाली की वजह से राजकोष को 1.84 लाख करोड़ रुपये का घाटा हुआ। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि कॉरपोरेट घरानों ने करों में मिलने वाली इस भारी छूट से अर्जित रक़म को निवेश करने की बजाय अपने क़र्ज़ों की अदायगी या मुनाफ़े को बढ़ोत्तरी के रूप में दिखाया।

कॉरपोरेट कर में होने वाली इस कटौती से होने वाले राजस्व के नुक़सान की भरपायी करने के लिए केन्द्र सरकार ने जीएसटी की दरों को बढ़ाने और पेट्रोल व डीज़ल पर करों की दरों में बढ़ोत्तरी करने की रणनीति अपनायी जिसका सीधा असर आम लोगों पर करों के बढ़ते बोझ के रूप में सामने आया। 2020-21 में राजकोष में अप्रत्यक्ष करों के हिस्से में 50 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी देखने में आयी है। आमदनी के हिसाब से नीचे की 50 फ़ीसदी आबादी ऊपर की 10 फ़ीसदी आबादी के मुक़ाबले 6 गुना अधिक करों का भुगतान करती है। असमाधान कराधान प्रणाली को बढ़ती असमानता के लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार ठहराने के बाद रिपोर्ट में समाधान के तौर पर शीर्ष के 1 फ़ीसदी धन्नासेठों की सम्पत्ति पर 2-3 प्रतिशत कर लगाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रों की कल्याणकारी स्कीमों पर ख़र्च करने के सुझाव दिये गये हैं। रिपोर्ट में आँकड़ों के साथ दिखाया गया है कि भारत में अरबपतियों की सम्पत्ति पर 2 प्रतिशत कर लगाकर कुपोषितों के लिए पोषणयुक्त भोजन 3 साल तक उपलब्ध कराये जा सकते हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के लिए आवश्यक राशि 5 सालों तक के लिए उपलब्ध करायी जा सकती है।

है। इस दौरान मज़दूरों की आत्महत्याओं में ज़बर्दस्त इज़ाफ़ा देखने में आया। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के मुताबिक़ 2021 में प्रतिदिन औसतन 115 मज़दूरों ने आत्महत्याएँ कीं। इस दौरान अमीरों की सम्पत्ति में जो इज़ाफ़ा हुआ है वह पूँजीवादी व्यवस्था के घिनौने और अमानवीय चरित्र की ही एक बानग़ी है। लेकिन सवाल ये उठता है कि व्यवस्था के ऐसे चरित्र के बारे में इसी व्यवस्था द्वारा पोषित संस्था क्यों आँकड़े जारी कर रही है?

पूँजीपति वर्ग ऑक्सफ़ैम जैसी संस्थाओं को इसलिए प्रयोजित करता है ताकि मुनाफ़े की अन्धी दौड़ में बेतहाशा दौड़ते हुए जब पूँजीपतियों की मुनाफ़े की हवस मज़दूर वर्ग को इतना निचोड़ने लगे कि इस समूची व्यवस्था का ही अस्तित्व ख़तरे में आ जाये तो ऐसी संस्थाएँ दुनियाभर के पूँजीपतियों को आगाह करें कि मुनाफ़े का खेल सँभलकर खेलो, कहीं ऐसा न हो जाये कि इस खेल की ज़मीन ही खिसक जाये! ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट के अलावा एक अन्य रिपोर्ट से

ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट से मज़दूर वर्ग के लिए सबक़

ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट में जो आँकड़े दिये गये हैं वो आज के दौर के पूँजीवाद के मानवद्रोही चरित्र की बस एक झलक प्रस्तुत करते हैं। हम मज़दूर अपने अनुभव से जानते हैं कि कोरोना महामारी का एक-एक दिन काटना कितना मुश्किल था क्योंकि हमारी आमदनी जो पहले भी बेहद कम हुआ करती है वो कोरोना काल में अपने रसातल में जा पहुँची। इस महामारी में कितने मज़दूरों और उनके परिवार वालों ने बीमारी की वजह से दम तोड़ा और कितनों ने भूख से दम तोड़ा इसका कोई सटीक आँकड़ा नहीं मौजूद

भी इस सच्चाई को समझा जा सकता है। इस बार 'वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम' ने 'ग्लोबल रिस्क रिपोर्ट' नामक एक अन्य रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया है कि "अगले दशक की विशेषता पर्यावरणीय और सामाजिक संकट होंगे जिनके मूल में भूराजनीतिक और आर्थिक रुझान होंगे।"

ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट से हालाँकि देश में तेज़ी से बढ़ती हुई असमानता की एक झलक मिलती है, लेकिन इस असमानता की मूल वजह पर कोई बात नहीं की गयी है। यह आसानी से समझा जा सकता है कि पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाली संस्था कभी भी पूँजीवाद की संरचना पर कोई सवाल नहीं उठा सकती क्योंकि उससे तो पूँजीवाद के अस्तित्व पर सवालिया निशान लग जायेगा और उसके विकल्प की बात करनी पड़ेगी। इसलिए रिपोर्ट में इस सच्चाई को जानबूझकर छिपाया गया है कि असमानता तो पूँजीवादी ढाँचे और उसकी कार्यप्रणाली में अन्तर्निहित है। जिस व्यवस्था में उत्पादन व उपभोग के साधनों पर समाज के छोटे-से तबक़े का क़ब्ज़ा होता जाता है और अधिकांश आबादी के पास अपनी श्रम-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं रह जाता उसमें समाज की कुल सम्पदा के स्वामित्व के मामले में ग़ैर-बराबरी का बढ़ना कोई ताज्जुब की बात नहीं है। साथ ही पूँजीवादी संचय की प्रक्रिया लगातार इस ग़ैर-बराबरी को लगातार फिर से उत्पादित करने काम करती रहती है।

उत्पादन के क्षेत्र में जो ग़ैर-बराबरी पैदा होती है वह वितरण के क्षेत्र में सरकार की नीतियों की वजह से और बढ़ जाती है क्योंकि सरकार पूँजीपति वर्ग के हितों की ही नुमाइन्दगी करती है। इस प्रकार सरकार की नीतियाँ, जैसे कि कराधान सम्बन्धी नीतियाँ, ग़ैर-बराबरी का स्रोत नहीं होतीं बल्कि वे उत्पादन के क्षेत्र में पहले से ही पैदा हुई ग़ैर-बराबरी को और बढ़ाने का काम करती हैं। ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट में महज़ सरकार की कराधान प्रणाली की आलोचना पेश की गयी है और यह दिखाया गया है कि किस प्रकार सरकार अमीरों से कम कर वसूलती है और ग़रीबों से ज़्यादा। असमानता के समाधान के तौर पर रिपोर्ट में शीर्ष के 1 प्रतिशत धन्नासेठों पर सम्पत्ति कर, उत्तराधिकार कर, कैपिटल गेन्स कर आदि लगाकर शिक्षा व स्वास्थ्य की कल्याणकारी योजनाओं पर ख़र्च बढ़ाने की बात की गयी है। इस प्रकार यह भ्रम पैदा किया गया है कि धन्नासेठों पर थोड़ा कर लगा देने मात्र से ग़ैर-बराबरी को क़ाबू में किया जा सकता है।

धन्नासेठों पर ज़्यादा कर लगाने और आम लोगों पर करों का बोझ कम करने की प्रगतिशील कराधान प्रणाली की माँग मज़दूर वर्ग की भी माँग रही है। परन्तु ऑक्सफ़ैम के सुझावों और मज़दूर वर्ग की रणनीति में बुनियादी फ़र्क़ यह है कि मज़दूर वर्ग का संघर्ष इस तात्कालिक माँग तक नहीं रुकता है क्योंकि हमें यह अच्छी तरह से पता है कि जब तक पूँजीवाद रहेगा वह समाज का ध्रुवीकरण करते हुए असमानता को लगातार बढ़ाता रहेगा और एक ध्रुव पर अपार सम्पदा इकट्ठी होती जायेगी और दूसरे ध्रुव पर दुख और तकलीफ़ें इकट्ठी होती जायेंगी। इसलिए हमारी लड़ाई प्रगतिशील कराधान प्रणाली की माँग तक नहीं रुकती है बल्कि असमानता पर टिकी इस समूची व्यवस्था को आमूलचूल रूप से बदलने तक जाती है।

यूक्रेन-रूस युद्ध की विभीषिका में साम्राज्यवादी गिद्ध हथियार बेच कमा रहे बेशुमार मुनाफ़ा

● सनी

यूक्रेन और रूस के बीच फ़रवरी 2022 से शुरू हुए युद्ध का एक साल पूरा होने वाला है। इस युद्ध के पीछे की राजनीति और इसके कारण हो रही तबाही पर हम लिखते रहे हैं। इस बार हम पाठकों को बताना चाहते हैं कि साम्राज्यवादी गिद्ध किस तरह इस युद्ध में अरबों डॉलर के हथियार बेचकर बेहिसाब मुनाफ़ा बटोर रहे हैं।

अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी ने हाल ही में यूक्रेन को और टैंक भेजने की माँग मान ली है। अमेरिका के एब्राहम, जर्मनी के ल्योपर्ड, और ब्रिटेन के चैलेंजर टैंक यूक्रेन भेजे जाएंगे। इसके साथ ही अन्य देश भी जिनके पास जर्मन हथियारों का ज़खीरा है, वे यूक्रेन को हथियार निर्यात कर सकेंगे। अभी यूक्रेन इन टैंकों की कम संख्या आयात कर रहा है क्योंकि यूक्रेनी सेना को इनके इस्तेमाल में अभ्यस्त हो जाने में समय लगेगा। आने वाली गर्मियों में नाटो देशों द्वारा अधिक संख्या में टैंक भेजे जायेंगे। इस लम्बे युद्ध अभियान में रूस के ख़िलाफ़ यह नाटो का बड़ा कदम है जिसमें आगे फ्रांस के भी शामिल होने की भी सम्भावना है।

यूक्रेन इन टैंकों की माँग युद्ध शुरू होने के समय से कर रहा था जिसे युद्ध के 11 महीनों बाद नाटो के देश अब पूरा कर रहे हैं। सैन्यकरण की लहर इस समय रूस और नाटो देशों में उफान पर है। पश्चिमी यूरोप के देशों में न सिर्फ यूक्रेन को हथियार बेचने की होड़ मची हुई बल्कि अपने हथियारों का ज़खीरा भी बड़ा किया जा रहा है। जर्मनी का बढ़ता सैन्यकरण इसीका उदाहरण है। पिछले साल ही रूस में भी अनिवार्य सैन्य सेवा के ज़रिए आरक्षित सेना की संख्या बढ़ायी गयी और लोगों द्वारा इसका विरोध करने पर व्यापक गिरफ़्तारियाँ की गयीं। पोलैण्ड ने भी अपनी आरक्षित सेना की संख्या को गुणात्मक तौर पर बढ़ाया है। फ्रांस भी अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने की योजना बना रहा है।

साम्राज्यवादी शक्तियों की ज़ोर-आज़माइश का एक और अखाड़ा दक्षिणी चीन सागर बना हुआ है जिसके चलते जापान भी सैन्यकरण की ओर कदम उठा रहा है। जापानी सरकार के अनुसार जापान 2027 तक अपने रक्षा बजट को नाटो में शामिल होने के स्तर तक ले जायेगा। रूस-यूक्रेन युद्ध में नाटो प्रत्यक्ष तौर पर शामिल नहीं है और नाटो के सदस्य पश्चिमी देश दोग़लेपन का परिचय देते हुए शान्ति की दुहाई भी देते रहे हैं। एक तरफ़ ये देश शान्ति का पैग़ाम देते हैं और दूसरी तरफ हथियारों की सौदेबाज़ी में लगे हैं।

रूसी राष्ट्रपति पुतिन इस साम्राज्यवादी युद्ध को बार-बार विशेष सैन्य अभियान कहते हैं और रूस में युद्ध को "युद्ध" कहने वालों को जेल भेज दिया जाता है। लेकिन हाल ही में पुतिन को भी इसे युद्ध कहना पड़ा। दूसरी ओर जर्मनी के वित्त मंत्री ने भी स्वीकारा कि वास्तव में यूरोप के देश रूस के साथ युद्धरत हैं। हालाँकि जर्मनी ख़ुद इस युद्ध में भागीदारी से इंकार करता रहा है। लेकिन इन साम्राज्यवादी देशों के हितों के हिसाब से शासक वर्ग के प्रतिनिधियों के मुँह से सच्चाई बाहर आ ही जाती है। आर्थिक संकट के चलते तीखी होते साम्राज्यवादी अन्तरविरोधों की वजह से ही यह युद्ध शुरू हुआ है। यह युद्ध यूक्रेन की जनता पर भयानक कहर बनकर टूटा है और इस बर्बादी में साम्राज्यवादी शक्तियों की रक्षा क्षेत्र की कम्पनियों ने जमकर मुनाफ़ा कमाया है।

इस समय युद्ध की मोर्चा दक्षिण-पूर्वी यूक्रेन लगभग 815 किलोमीटर लम्बाई में फैला हुआ है जिसकी ज़द में लाखों सैनिक और नागरिक फँसे हैं। रोज़ ही यूक्रेन के शहरों पर और कुछ सीमावर्ती रूसी इलाकों में बमबारी होती है। इस युद्ध में यूक्रेन की उत्पादक शक्तियों की भयानक बर्बादी हुई है और साथ ही हज़ारों की संख्या में बेगुनाह नागरिक मारे गये हैं। वहीं हज़ारों रूसी सैनिक भी रूसी साम्राज्यवादियों के युद्ध-यज्ञ की भेंट चढ़ चुके हैं। 24 फरवरी 2022 से शुरू हुए इस युद्ध में अब तक 5000 से ज़्यादा रूसी सैनिक और 13,000 से ज़्यादा यूक्रेनी सैनिक मारे जा चुके हैं। यूक्रेन के 7000 से ज़्यादा नागरिकों की मौत हुई है जिसमें लगभग 500 बच्चे भी हैं। यूक्रेन में 67 लाख लोग अपने ही देश में शरणार्थी बन गये हैं। युद्ध की त्रासदी बयान करता एक शहर मरियुपोल है जिसकी आबादी चार लाख से घटकर एक लाख से भी कम हो गयी है। अधिकतर लोग शहर छोड़कर जा चुके हैं। इस शहर का 80 प्रतिशत चिकित्सा तंत्र नष्ट हो चुका है। अब तक हुए रूसी हमलों में यूक्रेन के 170 स्वास्थ्य केन्द्र तबाह हो चुके हैं। यूक्रेन में सितम्बर 2022 तक ही करीब डेढ़ लाख इमारतें और घर तबाह हो चुके हैं। यूक्रेन का ऊर्जा तंत्र भी युद्ध के कारण बुरी तरह प्रभावित हुआ है और एक बड़ी आबादी बिना बिजली के और बहुत सीमित संसाधनों में जीने को मजबूर है।

इस भयानक बर्बादी के बीच रूस और पश्चिमी देशों के रक्षा उद्योग की कम्पनियों ने ज़बरदस्त मुनाफ़ा कमाया है। टैंक, से लेकर ड्रोन, मिसाइल, मशीनगन, विमान तथा अन्य हथियारों का बाज़ार कुलाँचे मारकर आगे बढ़ रहा है। लॉकहीड मार्टिन, रेथ्योन, बोइंग और नॉर्थरोप ग्रुम्मन जैसी अमेरिकी हथियार कम्पनियों ने पिछले साल ज़बरदस्त मुनाफ़ा कमाया है। नॉर्थरोप ग्रुम्मन के शेयर 40 प्रतिशत बढ़ गये हैं जबकि लॉकहीड मार्टिन के शेयरों की कीमत में 37 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ है। ब्रिटेन की रक्षा क्षेत्र की कम्पनी बीएई सिस्टम्स के शेयर में नये साल की शुरुआत से अब तक 36 प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ है। ल्योपार्ड टैंक बनाने वाली जर्मनी की राईनमेटल कम्पनी ने भी पिछले साल जमकर मुनाफ़ा कमाया है। रूस की रक्षा कम्पनियों ने भी इस तबाही में ज़बर्दस्त मुनाफ़ा पीटा है। कलाशिनोव रूस की छोटे हथियार बनाने वाली सबसे बड़ी कंपनी है जो कि मोटरसाइकिल और मशीनों के पार्ट्स भी बनाती है। पिछले साल इसका हथियारों का उत्पादन बीस साल के रिकॉर्ड स्तर पर पहुँच गया जिसमें चालीस प्रतिशत से ज़्यादा सैन्य और छोटे हथियारों का उत्पादन हुआ। पिछले साल ही कम्पनी के इतिहास के सबसे बड़े सौदे भी हुए जिसमें कम्पनी ने 45 सरकारी हथियार समझौते और 24 सैन्य तकनीकी सहयोग के समझौते किये और साथ ही नये हथियार बनाने का लाइसेंस भी हासिल किया।

युद्ध से भविष्य में होने वाले मुनाफ़े का पूर्वानुमान लगाते हुए नाटो देशों और रूस ने अपने रक्षा बजट बढ़ा दिये हैं और इन देशों की हथियार बनाने वाली कम्पनियों ने अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ा दी है। हाल ही में अमेरिकी सीनेट ने एक विधेयक पास किया जिसके तहत 858 अरब डॉलर रक्षा क्षेत्र में खर्च किये जायेंगे जो पिछले वर्ष से अधिक है। ब्रिटेन सरकार ने बीएई सिस्टम्स को बम बनाने का ऑर्डर दिया है जबकि स्वीडन की कम्पनी साब को ब्रिटेन और स्वीडन से टैंक मारक हथियार बनाने का ऑर्डर मिला है। जर्मनी ने 8 अरब डॉलर में लॉकहीड मार्टिन को लड़ाकू विमान बनाने का आर्डर दिया है। 2022 में रूस का रक्षा बजट 5 ट्रिलियन रूबल से ज़्यादा हो चुका है जो कि प्रस्तावित राशि 3.47 ट्रिलियन रूबल से बहुत अधिक है। 2025 तक रूस करीब 34 ट्रिलियन रूबल हथियारों पर ख़र्च करने की योजना बना रहा है।

एक तरफ युद्ध से कराहते शहर और मरती जनता है तो दूसरी तरफ़ हथियारों की सौदेबाज़ी करते हुक्मरान लाशों से पटे शहरों पर गिद्ध की तरह मँडरा रहे हैं। साम्राज्यवाद के दौर में विश्व पूँजीवादी व्यवस्था लोगों को यही दे सकती है।

लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवाद का अर्थ ही युद्ध होता है। पूरी विश्व पूँजीवादी व्यवस्था आर्थिक संकट के जिस भँवर में फँसी हुई है, यह युद्ध उसकी ही पैदावार है। आर्थिक संकट के चलते ही तीखे हो चुके साम्राज्यवादी अन्तरविरोध युद्ध को जन्म दे रहे हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में सैकड़ों युद्ध होते रहे हैं। आज भी सीरिया, यमन, अफ़ग़ानिस्तान, सूडान, इथियोपिया सहित दुनिया के कई क्षेत्रों में साम्राज्यवादियों द्वारा भड़काये गये युद्ध जारी हैं। पूँजीवाद के आर्थिक संकट से निजात पाने का विध्वंसकारी तरीका भी युद्ध ही है जो उत्पादक शक्तियों की बर्बादी करता है और मुनाफ़े को बढ़ाने के रास्ते खोलता है। रूस-यूक्रेन युद्ध में भी रणक्षेत्र में बिछी लाशों पर मौज उड़ाने वाले साम्राज्यवादी गिद्धों ने न सिर्फ़ हथियार बेचकर भारी मुनाफ़ा कमाया है बल्कि उनकी नज़र तबाह शहरों के पुनर्निर्माण के ज़रिए भविष्य में होने वाले पूँजी निवेशों पर भी टिकी हुई है।

"क्रान्ति से हमारा अभिप्राय अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना से है जिसको इस प्रकार के घातक ख़तरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुसत्ता को मान्यता हो तथा एक विश्वसंघ मानवजाति को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्धों से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सके।" – भगतसिंह

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की कविता

आठ हज़ार ग़रीब लोगों का शहर के बाहर इकट्ठा होना

“आठ हज़ार से अधिक बेरोज़गार खदानकर्मी, अपने बीवी-बच्चों समेत बुडापेस्ट के बाहर साल्गोटार्ज़न रोड पर जमा हो रहे हैं। उन्होंने अपने अभियान में पहली दो रातें बिना कुछ खाये-पिये ही गुज़ार दी हैं। उनके शरीर पर बेहद नाकाफ़ी जीर्ण-शीर्ण कपड़े हैं। देखने में वे बस हड्डियों के ढाँचे भर ही हैं। अगर वे खाना और काम पाने में नाकाम रहे, तो उन्होंने कसम खा रखी है कि वे बुडापेस्ट पर धावा बोल देंगे, भले ही इससे ख़ून-ख़राबा क्यों न शुरू हो जाये, उनके पास अब खोने के लिए कुछ भी नहीं बचा है। बुडापेस्ट क्षेत्र में सैनिक बल तैनात कर दिये गये हैं, तथा उन्हें सख़्त आदेश दे दिये गये हैं कि अगर लेशमात्र भी शान्ति भंग हो तो वे अपने आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल करें।”

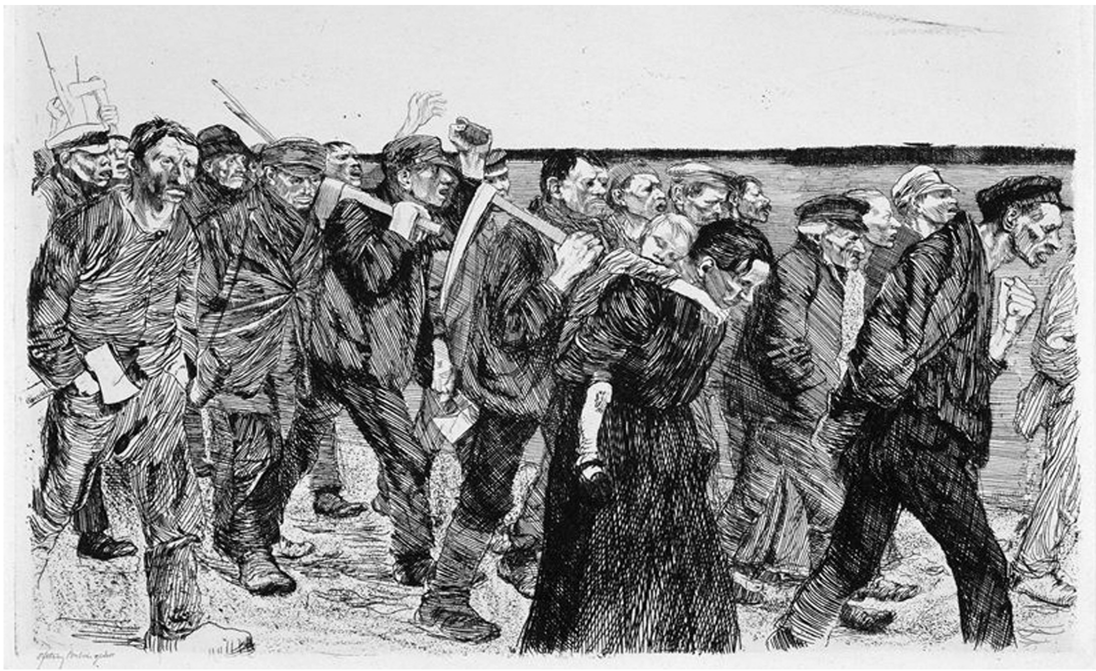

हम जा पहुँचे सबसे बड़े शहर में
हममें से 1000 भूख से पीड़ित थे
1000 के पास खाने को कुछ नहीं था
1000 को खाना चाहिए था।
जनरल ने अपनी खिड़की से देखा
तुम यहाँ मत खड़े हो, वह बोला
घर चले जाओ भले लोगों की तरह
अगर तुम्हें कुछ चाहिए, तो लिख भेजो।
हम रुक गये, खुली सड़क पर:
‘हम हल्ला मचायें इससे पहले
वे हमें खिला देंगे।’
लेकिन किसी ने ध्यान नहीं दिया
जबकि हम देखते रहे उनकी धुआँ देती
चिमनियों को।
लेकिन आ पहुँचा फिर वह जनरल।
हमने सोचा : आ गया हमारा खाना।
जनरल बैठ गया मशीनगन के ऊपर
और पकाया जो था वह इस्पात।
जनरल बोला : बहुत भीड़ लगा रखी है
तुम लोगों ने
और गिनने लगा आगे बढ़कर।
हम बोले : बस इतने ही जो तुम्हारे सामने हैं
कुछ भी नहीं है आज खाने को।
हम नहीं बना सके अपनी झोपड़-पट्टी
हम नहीं साफ़ कर सके फिर से
अपनी कमीज़ें
हमने कहा : अब हम और इन्तज़ार
नहीं कर सकते।
जनरल बोला : ज़ाहिर है।
हमने कहा : लेकिन हम सभी मर नहीं सकते
जनरल बोला : क्यों नहीं?
हालात गर्म हो रहे हैं, शहर के लोगों ने कहा
जब सुनाई दी उन्हें पहली गोली की आवाज़

मन्दी और बेरोज़गारी जनता को पूँजीवाद की सौगातें हैं

(पेज 24 से आगे)

में थी, अब पूँजीवाद का यह संकट इस स्थिति को और गम्भीर बना रहा है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में दुनियाभर के बाज़ार एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। उत्पादन प्रक्रिया यानी पूँजी और श्रम भूमण्डलीकृत असेम्बली लाइन में जुड़े हुए हैं। इसलिए ग्लोबल असेंबली लाइन में किसी भी सम्भावित हलचल से पूरी की पूरी असेम्बली लाइन प्रभावित होती है। 1973 का तेल संकट, 1990 का संकट और 2008 का सबप्राइम संकट इस बात को सत्यापित करता है। इसलिए भारतीय मीडिया और पूँजीपति वर्ग के टुकड़ों पर पलने वाले भाड़े के अर्थशास्त्री कोरी बकवास कर रहे हैं कि इस वैश्विक संकट का असर भारतीय बाज़ार पर या तो नहीं होगा या बहुत कम होगा।

अभी कुछ दिनों पहले तक पूँजीवादी हलकों में इस बात की खूब चीख-चिल्लाहट थी कि आज का युग टेक्नोलाजी का युग है, बौद्धिक श्रम का युग है। मन्दी बीते दौर की बात है, पूँजीवाद का यह युग पूँजीवादी संकट से परे है। अब काम करने वाला श्रमिक मज़दूर नहीं है बल्कि पार्टनर है। आर्थिक संकट की आहट के साथ ही इस बकवास की भी कलई खुल गयी। हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि पूँजीवाद केवल पूँजीवाद होता है, नया और पुराना पूँजीवाद बकवास है। पूँजीवादी व्यवस्था उजरती श्रम के शोषण पर टिकी मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था होती है। पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा पूँजीपति वर्ग को मजबूर करती है कि वह नयी तकनोलाजी, नयी मशीनों को लगाकर श्रम की उत्पादकता को बढ़ाये और उत्पादन की लागत को कम से कम करे। लेकिन इस प्रक्रिया में नया मूल्य पैदा करने वाले कारक श्रमशक्ति पर सापेक्षिक ख़र्च कम होता जाता है। चूँकि नये मूल्य का एक हिस्सा मुनाफ़े के रूप में पूँजीपति वर्ग के पास जाता है और जैसे-जैसे श्रमशक्ति पर सापेक्षिक ख़र्च कम होता है और मशीनों इत्यादि पर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसी प्रक्रिया में मुनाफ़े की दर भी नीचे गिरती है। पूँजीवाद का इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि इस व्यवस्था में मुनाफ़े की दर में गिरावट की एक दीर्घकालिक प्रवृत्ति होती है। मुनाफ़े की दर में गिरावट की वजह से पूँजीपति उत्पादक निवेश कम करता है और पूँजी के बड़े हिस्से को शेयर मार्केट और अन्य अनुत्पादक क्षेत्रों में निवेशित करता है। उत्पादक निवेश में कमी फिर ‘औद्योगिक रिज़र्व सेना’ यानी बेरोज़गारों की फ़ौज के आकार को बढ़ाती है। बढ़ती बेरोज़गारी पूँजीपति वर्ग को औसत मज़दूरी में कटौती करने का मौक़ा देती है जिसकी वजह से मज़दूर वर्ग की ख़रीदने की क्षमता कम हो जाती है। एक तरफ बाज़ार माल से पटे रहते हैं और दूसरी ओर भूखे और नंगे लोग चीज़ों के अभाव में दर-दर की ठोकर खाने को मजबूर होते हैं। हर सेक्टर में छँटनी, तालाबन्दी, कमरतोड़ महँगाई, बेरोज़गारी और भुख़मरी के कारण मज़दूर वर्ग और जनता के व्यापक हिस्से को यह स्थिति गर्त में धकेल देती है। मन्दी से निजात पाने के लिए पूँजीपति वर्ग दुनिया को युद्ध में धकेलकर बड़े पैमाने पर उत्पादक शक्तियों का विनाश करता है, पूँजीपति वर्ग पूँजीवादी सरकारों पर सभी श्रम क़ानूनों, जनवादी स्पेस को ख़त्म करने का दबाव बनाता है। इसके लिए पूँजीपति वर्ग अक्सर फ़ासीवादी शक्तियों को चुनता है। फ़ासीवादी सरकारें औरक पार्टियाँ सबसे निरंकुश तरीके से जनता के प्रतिरोध को कुचलने और मेहनतकशों को आपस में बाँटने-बहकाने की क्षमता रखती हैं। यही काम आज भाजपा अपने देश में कर रही है। उत्पादक शक्तियों के बड़े पैमाने पर विनाश के बाद पूँजीवाद में पुनः सापेक्षिक तेज़ी का दौर आता है लेकिन जल्द ही यह दौर भी गुज़र जाता है और पूँजीवादी व्यवस्था पहले से भी व्यापक और गहरे संकट के भँवर जाल में फँस जाती है।

इस प्रकार पूँजीवाद मज़दूर वर्ग और आम आबादी को केवल भविष्य की अनिश्चितता, बेकारी, भुखमरी आदि ही दे सकता है। इस कुचक्र से निकलने का मज़दूर वर्ग के पास केवल एक ही रास्ता है कि मज़दूर वर्ग अपनी संगठित ताकत के दम पर पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंके और समाजवादी व्यवस्था क़ायम करे।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2025
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

मन्दी और बेरोज़गारी जनता को पूँजीवाद की सौगातें हैं

बढ़ते आर्थिक संकट के बीच बड़ी कम्पनियों से लेकर स्टार्टअप तक छँटनी का सिलसिला जारी

● **अविनाश**

पूँजीवादी दुनिया एक बार फिर वैश्विक मन्दी के मुहाने पर खड़ी है। दिन-ब-दिन यह संकट गहरा और व्यापक होता जा रहा है। इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, यूरोप, आस्ट्रेलिया, एशिया की सभी छोटी-बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ तेज़ी से इसकी चपेट में आ रही हैं। बैंक ऑफ़ इंग्लैण्ड ने चेताया है कि यह मन्दी ब्रिटेन में 100 वर्षों में सबसे लम्बी होने वाली है।

बुर्जुआ अर्थशास्त्री अपनी वर्गीय पक्षधरता के मुताबिक मन्दी के कारणों की पड़ताल पूँजीवादी उत्पादन के क्षेत्र में करने की जगह भू-राजनीति, शेयर बाज़ार, कर्ज़ों में वृद्धि, पर्यावरणीय बदलावों आदि में कर रहे हैं। बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों की एक अच्छी-ख़ासी तादाद मौजूदा संकट की वजह रूस-यूक्रेन युद्ध को बता रही है। लेकिन सच्चाई यह है कि युद्ध अपने आप में पूँजीवादी आर्थिक संकट का कारण नहीं होता है बल्कि ज़्यादातर मामलों में संकट की अभिव्यक्ति होता है। यूक्रेन की धरती पर चल रहा मौजूदा साम्राज्यवादी दंगल, सीरिया समेत मध्यपूर्व में चल रहे छोटे-बड़े युद्ध और यूरोप से लेकर एशिया के तमाम देशों में मजबूत होती दक्षिणपन्थी ताक़तें, निरंकुश फ़ासीवादी ताक़तों का सत्ता पर क़ाबिज़ होना पूँजीवादी संकट की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ हैं। दरअसल मन्दी मुनाफ़ा केन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था की नैसर्गिक गति से पैदा होने वाली एक लाइलाज बीमारी है। पूँजीपतियों की आपसी प्रतिस्पर्धा से पैदा होने वाली हर मन्दी मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के लिए भयंकर तबाही का कारण बनती है। मन्दी से होने वाले नुकसान का हर्जाना पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग से छँटनी, तालाबन्दी, आसमान छूती महँगाई, भयंकर बेकारी और भुखमरी आदि के रूप में वसूलता है। यह सिलसिला एक बार फिर बड़े पैमाने पर शुरू हो चुका है। अल्फ़ाबेट, एप्पल, अमेज़न, मेटा, स्विगी, ज़ोमैटो, बायजूस, अनएकेडमी, ब्लिंकिट जैसी बड़ी कम्पनियाँ बड़े पैमाने पर छँटनी कर रही हैं। कल तक जिसके पास रोज़गार था वह आज सड़क पर आ चुका है और यह सिलसिला बदस्तूर जारी है।

मन्दी की सुगबुगाहट के बीच पिछले साल जून-जुलाई से ही छँटनी की प्रक्रिया जारी है। दुनियाभर में केवल बड़ी टेक्नोलॉजी कम्पनियों ने ही अबतक दो लाख से ज़्यादा लोगों की छुट्टी कर दी है। नवम्बर 2022 के बाद से इसमें अभूतपूर्व रूप से वृद्धि हुई है। लागत को कम करके मुनाफ़े की गिरती दर को रोकने के मकसद से अब बहुत-सी कम्पनियाँ अपने कार्यालयों की संख्या कम कर रही हैं। इस प्रक्रिया में सीधे कम्पनी से ना जुड़ी लेकिन इसपर अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर एक बड़ी आबादी भी उजड़ रही है। ट्विटर अपने कर्मचारियों की संख्या आधी कर चुका है और आने वाले दिनों में इस संख्या में गिरावट के ही संकेत हैं। छँटनी कितने बड़े पैमाने पर हो रही है इसे नीचे दी गयी तालिका से समझा जा सकता है।

कम्पनी	छँटनी फ़ीसदी में
ट्विटर	50
क्रैकेन	30
कैमियो	25
रोबिनहुड	23
इंटेल	20
स्नैपचैट	20
क्वाइनबेस	18
ओपेनडोर	18
मेटा	15
स्ट्राइप	14
शॉपीफ़ाई	10

भारत में काम कर रहे ट्विटर के 80 फ़ीसदी कर्मचारियों को बाहर का रास्ता दिखाया जा चुका है। हाल ही में अमेज़न ने अपने 18000 और एचपी ने 6000 से ज़्यादा कर्मचारियों को निकालने की बात कही है। अमेज़न के नोएडा, गुड़गाँव स्थित कार्यालयों में छँटनी की प्रक्रिया भी शुरू हो चुकी है। जुलाई 2022 से अब तक माइक्रोसॉफ़्ट तीन बार और नेटफ़्लिक्स दो बार छँटनी कर चुका है। हार्डड्राइव निर्माता सीगेट 3000 से ज़्यादा लोगों की छँटनी कर चुका है और आने वाले दिनों में इससे भी बड़े पैमाने पर छँटनी की बात कर रहा है। आईबीएम 3900 कर्मचारियों को बाहर कर चुका है। हालिया रिपोर्ट के मुताबिक बेरोज़गार हुए लोगों में से 10 फ़ीसदी लोगों को भी दुबारा काम नहीं मिल पा रहा है। इस बार कम्पनियाँ कर्मचारियों को यह बताने की ज़हमत भी नहीं उठा रही हैं कि उन्हें बाहर कर दिया गया है। एक मेल भेजकर कर्मचारियों को कम्पनी सिस्टम की पहुँच से दूर कर दिया जा रहा है। ये केवल चन्द उदाहरण हैं, वास्तविक हालत इससे भी दयनीय है और आने वाले दिनों में यह संकट और गम्भीर होने वाला है। डिलिवरी बॉय, विज्ञापन के क्षेत्र में लगे, मरम्मत करने वाले, लोडिंग-अनलोडिंग में लगे मज़दूरों की एक बहुत बड़ी संख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष आदि रूप से बिना किसी क़रार के इन कम्पनियों से जुड़ी होती है। जिनकी संख्या क़रारशुदा कामगारों की तुलना में कई गुना होती है लेकिन आँकड़ों के इस खेल में यह आबादी गुम हो जाती है। इस आबादी के पास ना कोई बचत होती है और ना किसी प्रकार की कोई सामाजिक सुरक्षा। पूँजीपति वर्ग के गुनाहों की क़ीमत यह आबादी भयंकर ग़रीबी, भुखमरी और असमय मृत्यु के रूप में चुकाती है।

गहराती वैश्विक मन्दी और भारत की स्थिति

भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर शशिकान्त दास ने पिछले दिनों लफ़्फ़ाज़ी करते हुए कहा कि इस वैश्विक संकट का असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत कम होगा। शशिकान्त दास यह बताना भूल गये कि भारतीय अर्थव्यवस्था पहले से ही रसातल में पहुँच चुकी है। क़रीब 34 करोड़ युवा बेरोज़गारी में धक्के खाने को मजबूर हैं। वैश्विक भूख सूचकांक गवर्नर महोदय की लफ़्फ़ाज़ी को बेपर्द करने के लिए काफ़ी है। सच्चाई यह है कि कोविड के बाद अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था में छोटे-मोटे उभार तो ज़रूर दिखे हैं लेकिन ऐसा कोई दौर देखने को नहीं मिला है जो कोविड के दौरान बेरोज़गार हुए लोगों को खपा सके। सेण्टर फ़ॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकॉनमी (सीएमआईई) की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक **भारत का जॉब मार्केट कोविड के पहले के स्तर तक भी नहीं पहुँच पाया है, और मन्दी ने भी दस्तक दे दी है।**

सीएमआईई के मुताबिक **कोविड के बाद देश में कुल रोज़गारशुदा लोगों की संख्या पहले की तुलना में 1.4 करोड़ कम हो गयी है। जनवरी 2020 की तुलना में अक्टूबर '22 में रोज़गारशुदा महिलाओं की संख्या में 96 लाख और पुरुषों की संख्या में 45 लाख की कमी हुई है। 15-39 वर्ष की आयु वर्ग के कोविड में बेरोज़गार हुए पाँच में से एक नौजवान को अब तक रोज़गार नहीं मिला है।** इस समयावधि में इसी आयु वर्ग के नौजवानों में आत्महत्या की दर में भी बेतहाशा वृद्धि हुई है। पहले से जर्जर हो चुकी भारतीय अर्थव्यवस्था में वैश्विक स्तर पर हो रही छँटनी-तालाबन्दी का असर भी अब दिखने लगा है।

बायजूस से 2500, ब्लिंकिट से 1600, अनएकेडमी से 1000 कर्मचारियों को निकाला जा चुका है। ई-कामर्स कम्पनी कार्स 24 ने अपने 6.6 फ़ीसदी कर्मचारियों की छँटनी की है। इंजीनियरिंग कम्पनी वेदान्तु ने बीते एक महीने में 2 बार छँटनी की प्रक्रिया चलाकर अपने कार्यबल को 80 फ़ीसदी पर ला दिया है।

मोदी सरकार सत्ता में आने के बाद से ही मेक इन इण्डिया और स्टार्टअप इण्डिया आदि का जो गुब्बारा फुलाया था, उसकी भी हवा निकल गयी है। ओयो, अनएकेडमी, मीशो, फेर्लेको, ट्रेल आदि स्टार्टअप्स अब नौकरी देने की जगह लोगों को बाहर का रास्ता दिखा रहे हैं वहीं लीडो लर्निंग, उदय, सुपरलर्न, क्वाइनवन जैसे कई सारे स्टार्टअप्स पर ताला लटक चुका है। इतिहासबोध और तर्कणा से रिक्त भारतीय मध्यवर्ग अक्सर बेरोज़गार युवकों को ज्ञान देता है कि नौकरी माँगने वाला मत बनो, दूसरों को नौकरी देने वाला बनो। स्टार्टअप (किसी ख़ास माँग के लिए छोटे स्तर से शुरू की गयी नयी कम्पनी) का भी इधर काफ़ी ढोल पीटा जा रहा है। लेकिन पूँजीवादी तर्कों से लैस यह आबादी इस बात से अनभिज्ञ है कि पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा में छोटी पूँजी की नियति डूबना ही है। इसे आँकड़ों से भी समझा जा सकता है। **भारत में शुरू होने वाले 95 फ़ीसदी स्टार्टअप्स एक साल भी नहीं टिक पाते हैं। जो बच जाते हैं उनमें से 85 फ़ीसदी की औसत मासिक आय 10,000 से कम होती है।** ऐसे में सहज ही समझा जा सकता है कि ये किसी भी प्रकार का रोज़गार मुहैया करा पाने में असमर्थ हैं।

छँटनी-तालाबन्दी में निकाले गये मज़दूरों/कर्मचारियों के जो आँकड़े हम तक पहुँचते हैं वो अनुबन्ध पर काम करने वाले कार्यबल का हिस्सा होते हैं। बिना अनुबन्ध के काम करने वाली देश की बड़ी आबादी के ऊपर आर्थिक तेज़ी के दौर में भी छँटनी की तलवार लटकी रहती है। पीरियॉडिक लेबर फ़ोर्स सर्वे ऑफ़ इण्डिया, 2021 के मुताबिक देश में लगभग दस करोड़ दिहाड़ी मज़दूर और क़रीब पाँच करोड़ वेतनभोगी मज़दूर बिना किसी लिखित अनुबन्ध के काम कर रहे हैं। यानी कुल कार्यबल का करीब 30 फ़ीसदी हिस्सा बिना किसी कार्य अनुबन्ध के काम कर रहा है। (वैसे दिहाड़ी मज़दूरों के सम्बन्ध में यह संख्या और भी ज़्यादा हो सकती है।) नियमित मज़दूरों को रखने की जगह आउटसोर्सिंग के ज़रिए काम कराया जा रहा है। 2004 के बाद से आउटसोर्स मज़दूरों की संख्या में 40 फ़ीसदी से ज़्यादा की वृद्धि हुई है।

हर साल 2 करोड़ नौकरी देने का सपना बेचकर सत्ता में आयी मोदी सरकार के दौर में बेरोज़गारी का संकट और गहरा हुआ है। सार्वजनिक क्षेत्र में सेवानिवृत्ति की वजह से ख़ाली होने वाले पदों को भरने की जगह समाप्त किया जा रहा है। भारतीय रेलवे में वित्तीय वर्ष 1990-91 में 16.52 लाख नियमित कर्मचारी कार्यरत थे जिनकी संख्या वित्तीय वर्ष 2021-22 में घटकर 12.43 लाख रह गयी है। नियमित नौकरियों की जगह बेहद कम वेतन पर बिना किसी सुविधा और सामाजिक सुरक्षा जैसे स्वास्थ्य, पेंशन या अवकाश आदि के लोगों से संविदा पर काम कराया जा रहा है। सरकारी विभागों में भी आठ घण्टे काम का तय फ़ार्मूला नदारद हो चुका है। पिछले एक दशक में सरकारी संस्थानों में भी नियमित नौकरियों की जगह आउटसोर्सिंग के चलन में बेतहाशा वृद्धि हुई है। **एक दशक के भीतर सरकारी विभागों में आउटसोर्स मज़दूरों की संख्या में लगभग 80 फ़ीसदी का इज़ाफ़ा हुआ है। 2011-2021 के बीच में सार्वजनिक उपक्रमों में कुल आउटसोर्स किये गये कर्मचारियों की संख्या 268815 से बढ़कर 4,81,395 हो गयी है।**

हालत का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि देश की कुल मज़दूर आबादी का लगभग 94 फ़ीसदी हिस्सा असंगठित क्षेत्र में लगा हुआ है जिन्हें नियोक्ता द्वारा कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं मिली हुई है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों में से 94% से अधिक की मासिक आय 10,000 रुपये या उससे भी कम है। भयंकर बेरोज़गारी और भविष्य की अनिश्चितता का दंश झेल रही देश की बड़ी आबादी सब कुछ सहने के लिए अभिशप्त है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का 52.2 फ़ीसदी कृषि क्षेत्र में, 9.93 फ़ीसदी घरेलू कामों में और 9.13 फ़ीसदी निर्माण क्षेत्र में लगा हुआ है। ऊपर के आँकड़ों को देखें तो भारत की संशोधनवादी पार्टियों और नरोदवादी पार्टियों का वैचारिक दिवालियापन और वर्ग सहयोगवादी कार्यक्रम की कलई भी खुल जाती है। ये पार्टियाँ मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र राजनीतिक पहलक़दमी को ख़त्म कर खेतिहर पूँजीपतियों की पालकी का कहार बनाने में लगी हुई हैं।

विभिन्न सरकारी और ग़ैर-सरकारी रिपोर्टों से लिये गये उपरोक्त तथ्य इस बात की गवाही दे रहे हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था पहले से ही गर्त

(पेज 23 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गाँधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006